समकालीन साहित्य, संस्कृति,
कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

फरवरी–मार्च, 2026, वर्ष 50

₹ 15/-

अन्तरिक्ष

सिकुड़ते रिश्ते

–संजय कुमार सिंह

स्वार्थ के कुहासे में दीदार–ए–शहर क्या होगा?
सिकुड़ते हुए घरोंदों में पंछी का बसर क्या होगा?
टूटते 'मैं के धागे जब बिखरेंगे धूल बनकर,
फिर रिश्तों की उजास का मौसम–ए–सफ़र क्या होगा?
बोली में छल–कपट है, चेहरों पर कुछ मुखौटे
सच्चे दिल की गवाही का मंज़र–ए–समर क्या होगा?
नफरत की धूप में जब पिघलेंगे ख्वाब सारे,
वटवृक्ष की छाँव का पैगाम–ए–असर क्या होगा?
गर दीवारें उसारी गयीं संदेह के ईंट–पत्थर से,
उन घरों में मिलन का त्यौहार–ए–सहर क्या होगा?
औरत की हथेली पर जलते हुए हक के चिराग,
दहलीज की सीमाओं का कायदा–ए–घर क्या होगा?
काँच सी नाजुक उम्मीदों का बोझ लिए चलते हैं,
तहजीब के आईने में ज़ख्मों का असर क्या होगा?
चंद सिक्कों के बदले गर हवा पानी भी बिक जाए,
उस बस्ती के गुलसन का बाद–ए–सहर क्या होगा?
थोड़ी सी मुहब्बत और कुछ वक्त देदे ऐ इंसाँ,
वर्ना आने वाली पीढ़ी का कल और असर क्या होगा?

◆

पता : वरिष्ठ वित्त एवं लेखाधिकारी, सूचना निदेशालय,
उ.प्र., लखनऊ–226001
मो. : 8808981010

अनुक्रम

लेख

- लता दीदी के गीतों ने बनाया चित्रकार ❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री / 3
- कन्नौजी लोक संस्कृति में भैया दूज ❑ डॉ. राजेश हजेला / 6

कहानियाँ

- जाग ! तुझको दूर जाना ❑ आनन्द प्रकाश त्रिपाठी / 8
- संगम घाट पर ❑ पूजा गुप्ता / 23
- गीतू लौट आई ❑ अर्चना त्यागी / 29
- वो सर्द रात ❑ शोभा गोयल / 32
- जमीन ढूँढवा दीजिए साहेब....! ❑ रजनी शर्मा बस्तरिया / 39
- भगवान ❑ मंजरी तिवारी / 44

लघुकथा

- ईमानदारी का इनाम ❑ डॉ. अलका जैन आराधना / 31

कविताएँ

- सिकुड़ते रिश्ते ❑ संजय कुमार सिंह / आवरण–2
- सिद्धांतों के मृत्युभोज ❑ विश्व भूषण मिश्र / आवरण–3
- ईश्वर से कुछ पूछना है ❑ देव प्रकाश चौधरी / 46
- ऋतु राज आया है ❑ डॉ. रेनू सैनी / 48
- परिंदे ❑ निर्मला डोसी / 49
- सदा सुहागन रही गुजरिया ❑ लालमणि सिंह / 52
- गौरैया ❑ कृष्ण कुमार यादव / 54
- प्रतीक्षा और प्रस्थान ❑ शिखा श्रीवास्तव / 56
- माँ ❑ साहित्य राजपूत / 57
- मुक्ति ❑ निधि वर्मा / 58
- दर्शन की लालसा ❑ वैजयन्ती श्रीवास्तव / 59
- शिक्षक ! ❑ डॉ. अवंतिका सिंह / 60

पुस्तक समीक्षा

- ख़्वाबों का ताना–बाना ❑ डॉ. रश्मि शील / 61

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 50 ❑ अंक 84, 85
❑ फरवरी–मार्च, 2026

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **विशाल सिंह**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

❑ **अरविन्द कुमार मिश्र**
अपर निदेशक, सूचना

❑ **चन्द्र विजय वर्मा**
सहा. निदेशक (प्रकाशन)

उप सम्पादक सूचना : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**

सहयोग : ❑ **अजय कुमार द्विवेदी**
सहयुक्त सम्पादक

भीतरी रेखांकन : **आस्था / रीतिका / वन्दना**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
ईमेल : **upmasik@gmail.com**

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रूपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
–सम्पादक

आवर्तन

हर वर्ष 15 मार्च को विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस मनाया जाता है इसका उद्देश्य उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों, सुरक्षा और जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक करना है। आज के उपभोक्तावादी युग में हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में उपभोक्ता है, क्योंकि वह प्रतिदिन विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग करता हैं इसलिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता अपने अधिकारों को जाने और आवश्यकता पड़ने पर उनका उपयोग करें। इसी दिन 1962 में अमेरिका के राष्ट्रपति जॉन.एफ. केनेडी ने अमेरिकी कांग्रेस में उपभोक्ता अधिकारों को औपचारिक मान्यता दी थी। उन्होंने उपभोक्ताओं के लिए चार प्रमुख अधिकार बताए– सुरक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, चयन का अधिकार और सुने जाने का अधिकार, बाद में 1983 से 15 मार्च को विश्व स्तर पर विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। उपभोक्ता अधिकारों का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित कराना है कि लोगों को सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण उत्पाद मिले।

उपभोक्ताओं को वस्तुओं की गुणवत्ता, मात्रा, कीमत, निर्माण तिथि और उपयोग से जुड़ी पूरी जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है। यदि किसी उत्पाद या सेवा से नुकसान होता है या उपभोक्ता को धोखा दिया जाता है, तो वह अदालत में शिकायत दर्ज कर न्याय प्राप्त कर सकता है। भारत में उपभोक्ता संरक्षण के लिए प्रभावी कानूनी व्यवस्था और 'जागो ग्राहक जागो' जैसे जागरूकता अभियान चलाए जाते हैं। वर्ष 2026 में इस दिवस का विषय 'सुरक्षित उत्पाद, 'आश्वस्त उपभोक्ता' रख गया है। इसका उद्देश्य सुरक्षित और मानक उत्पादों को बढ़ावा देना है।

इस वर्ष–मार्च माह में साहित्य अकादमी निर्णायक समिति ने वर्ष–2025 के लिए हिन्दी में वरिष्ठ साहित्यकार ममता कालिया को उनकी संस्मरण पुस्तक ''जीते जी इलाहाबाद'' के लिए व अन्य 24–शख्सियतों (8 कविता संग्रह, 4 उपन्यास, 6 कहानी संग्रह, 2 निबन्ध, एक साहित्यिक आलोचना, एक आत्मकथा, दो संस्मरण) के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित करने का फैसला किया है।

फरवरी मार्च के माह में अनेक प्रमुख हस्तियों की जयंती भी आती हैं। 01 फरवरी को अमृतलाल नागर, 13 फरवरी को सरोजिनी नायडू, 16 फरवरी को सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की जयंती होती है तो मार्च माह में सुप्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय एवं महादेवी वर्मा की जयंती आती है। महादेवी वर्मा छायावाद की एक प्रमुख स्तंभ हैं। उनके लेख, संस्मरण, कहानियां और कविताएं पाठकों को पूरी तरह से द्रवित कर देते हैं। उनकी बहुत प्रसिद्ध कविता है–जो तुम आ जाते एक बार विरह वेदना और प्रियतम के आने की प्रतीक्षा का अत्यंत भावुक चित्रण प्रस्तुत करती हैं:–

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार–तार
अनुराग भरा उन्माद राग।

फरवरी–मार्च के इस संयुक्तांक में सुरेन्द्र अग्निहोत्री, डॉ. राजेश हजेला के लेख एवं आनंद प्रकाश त्रिपाठी, पूजा गुप्ता, अर्चना त्यागी, रजनी शर्मा, शोभा गोयल की कहानियाँ एवं संजय कुमार सिंह, देव प्रकाश चौधरी, विश्व भूषण मिश्र, डॉ. रेनू सैनी, निर्मला डोसी, कृष्ण कुमार, निधि वर्मा, शिखा श्रीवास्तव आदि की कविताएँ तथा रतन कुमार श्रीवास्तव की पुस्तक समीक्षा है। आपको यह अंक कैसा लगा? हमें अपनी राय से अवश्य अवगत कराइएगा।

दिनेश कुमार गुप्ता

लता दीदी के गीतों ने बनाया चित्रकार

❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री

सुर साम्राज्ञी भारत रत्न लता मंगेशकर पर मुख्य रूप से केंद्रित 14 एकल चित्रकला प्रदर्शनी लतिका के माध्यम से अपनी कूची से कैनवास पर करतब करने वाले जबलपुर के रामकृपाल नामदेव विगत 4 दशक से चित्रकारी कर रहे हैं। उन्होंने लता मंगेशकर की कई पेंटिंग्स को अनोखे अंदाज में चित्रित किया है। उनके चित्रों की विशेषता यह है कि उन्होंने एक ही चित्र में अनेक छोटे–छोटे चित्र उकेरे हैं। इस पेंटिंग की खासियत यह है कि उन्होंने लता जी के कई मानवीय चेहरों को अपनी तूलिका से उकेरने का प्रयास किया है।

जबलपुर में बच्चों को पेंटिंग सिखाने वाले रामकृपाल नामदेव को बचपन से ही पेंटिंग का शौक था। वे 'लेखक' से कहते हैं, 'मैंने चित्रकला की कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की है। मैंने दूसरे लोगों की पेंटिंग देखकर पेंटिंग सीखी और तरह–तरह की पेंटिंग बनाने लगा। फेस–पेंटिंग की यह शैली कैसे उन्होंने अपनायी इस सवाल के जवाब में रामकृपाल जी बताते हैं, "बहुत पहले मैंने एक तस्वीर देखी थी जिसमें एक मानव चेहरे को टोकरी के आकार में चित्रित किया गया था। इस तस्वीर को देखकर मैंने भी ऐसी तस्वीरें बनाने का फैसला किया। इस शैली में थोड़ा सा बदलाव करके मैंने चेहरे पर कई चेहरे बनाने का फैसला किया। फिर मैंने कुछ ऐसी तस्वीरें बनाईं। महात्मा गांधी की एक पेंटिंग भी बनाई, जिसमें उनके 230 चेहरे थे। लता मंगेशकर के रेडियो पर गीत बचपन में अपने गांव बहोरीबंध में सुनते–सुनते चित्रकारी करने की प्रेरणा जगी तब से वह खुद को ज्यादा ऊर्जावान पा कर वह लता दीदी से अद्वैत प्रेम में डूब कर कंठ कोकिला के 50 से अधिक चित्र बना चुके हैं। इनमें से तीन चित्र ऐसे हैं जिनमें क्रमशः 930, 1436 और 4359 चेहरे हैं। 930 चेहरों वाली पेंटिंग को लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड में स्थान मिला है। इसमें लता जी के 299 चेहरे हैं, जबकि 630 चेहरे विश्व की प्रसिद्ध महिलाओं के हैं।

30 गुणा 24 इंच के फ्रेम पर आठ माह में लता दीदी का एक चित्र तैयार किया है। इस चित्र की खासियत यह है कि इसमें लता मंगेश्वर के 4359 चेहरे बनाए गए हैं। अपनी अनूठी

कला शैली को चित्र लतिका नाम देने वाले रामकृपाल बताते हैं कि वह ज्यादातर चित्र लता जी के ही बनाते हैं। चित्रों की प्रदर्शनी लगाने की बात जब आई तो उन्होंने इस शृंखला और कला शैली को एक नाम देना चाहा। तब उनके बेटे ने उन्हें चित्र लतिका नाम सुझाया। लता जी का बचपन का नाम लतिका था तो उन्हें यह नाम उपयुक्त लगा। अब तक वे चित्र लतिका शृंखला की 14 प्रदर्शनियां लगा चुके हैं। अयोध्या में जहां लता चौक बना है वहां भी अपनी प्रदर्शनी लगाने की योजना है। लता जी पर सबसे पहली पेंटिंग तैयार की थी वर्ष 2013 में और देखते ही देखते आज आपके पास उनके लगभग पचास से अधिक चित्र हैं।

नामदेव जी लता जी को साक्षात सरस्वती का स्वरूप मानते हैं। लता जी से मिलने की धुन में रामकृपाल ने कई बार उनके घर के चक्कर लगाए। सिक्योरिटी गार्ड ने उन्हें दीदी का ऑटोग्राफ और फोटो दिया, लेकिन वह संतुष्ट नहीं हुए। 2014 में उन्हें दीदी से मिलने का मौका मिला। दीदी को उनके चित्र काफी पसंद आए। उन्होंने एक पेंटिंग पर अपना ऑटोग्राफ भी दिया। महानता के शिखर पर होने के बावजूद दीदी की सादगी, साधारणतः रहन–सहन ने कूची के कलाकार का मन मोहा था। उनसे हुई मुलाकात को अपने जीवन की एक निधि मानते है जिसे हमेशा याद रखना चाहते हैं। "ग्राफिक का इस्तेमाल नहीं किया। मैं सभी चित्रों को हाथ से पेंट करता हूं। लतादीदी की तस्वीरों के लिए मुझे 'गूगल' से और इधर–उधर से उनकी कई पुरानी तस्वीरें मिलीं। उन्हीं के आधार पर चित्र बनाया गया है। लता दीदी के निधन की खबर तब आई जब मुंबई में प्रदर्शनी खत्म हुई थी।

लता मंगेशकर की कई पेंटिंग्स को अनोखे अंदाज में चित्रित किया है। उनके चित्रों की विशेषता यह है कि उन्होंने एक ही चित्र में अनेक छोटे–छोटे चित्र उकेरे हैं। इस पेंटिंग की खासियत यह है कि उन्होंने लता जी के कई मानवीय चेहरों को अपनी तूलिका से उकेरने का प्रयास किया है। जबलपुर में बच्चों को पेंटिंग सिखाने वाले रामकृपाल नामदेव को बचपन से ही पेंटिंग का शौक था। वे 'लेखक' से कहते हैं, 'मैंने चित्रकला की कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की है। मैंने दूसरे लोगों की पेंटिंग देखकर पेंटिंग सीखी और तरह–तरह की पेंटिंग बनाने लगा।

अतीत को याद करते हुए बताते है बचपन में छोटी–छोटी चीजों को बड़े गौर से देखना दीपावली पर गोबर तथा मिट्टी से दादी माँ के बनाए चित्रों को निहारना दिनचर्या में शामिल हो गया था। फलतः कला की ओर रुझान बढ़ता गया।

पेंसिल से चित्र बनाने का तभी प्रारंभ हो गया था। ननिहाल के पास में कलाकार भगवान दास द्वारा बनाए गई कृतियों ने भी आपको खूब प्रभावित किया। इतना प्रभावित किया कि आपने उनको अपना कला गुरु बना लिया। पर्वत लेकर उड़ते हुए हनुमान जी को आपने सबसे पहले चित्रित किया। कला की कोई अकादमिक शिक्षा भले ही आपको न मिली हो पर निरंतर अभ्यास से आपकी कृतियों में गजब की

परिपक्वता है। छोटे–छोटे चित्रों का बड़े चित्र के परिवेश में उपयोग करना कमाल का है।

रामकृपाल नामदेव की कृतियों में यथार्थवादी व्यवस्था स्पष्ट झलकती है। रंगों में शालीनता है। फूल–पत्तियों में मोहक मुस्कान है। सुगंध है, सौंदर्य है, प्रकृति का सानिध्य है। बचपन से ही प्रकृति के साथ ने आपको, साथ ही कृतियों को भी प्रकृति प्रेमी बना दिया है।

आपकी कृतियों की प्रदर्शनी ललित कला अकादमी नई दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद सहित देश की सभी प्रमुख कला स्थानों पर लग चुकी है। जो आम जनमानस में बहुत ही सराही गई। इस शृंखला से इतर भी आपके पास बहुत सारी कृतियाँ हैं जिसमें, राम दरबार मुख्य है।

रामकृपाल नामदेव ने बताया कि उनका प्रोफेशन ही चित्र बनाना है। एक दिन में कम से कम 7 से 8 घंटे चित्र बनाने में ही बीतते हैं। जिस दिन चित्रकारी नहीं करते, लगता है कि दिन में कुछ किया ही नहीं। रामकृपाल बताते हैं कि उनका जीवन काफी संघर्ष भरा रहा है लेकिन उनकी कला ने उन्हें मानसिक और आर्थिक रूप से भी सहारा दिया।

लता जी पर बनाए चित्र जो इतिहास रच सके

एक कृति जिसमें 1436 छोटे चेहरे हैं लता जी चित्र में मुख्य हैं बाकी महान संगीतकार, निर्देशक, गीतकार जैसे लोगों की पूरी शृंखला है। लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स, इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स, एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में भी आपके चित्र शामिल हैं।

लता मंगेशकर की ब्लैक एंड व्हाइट पेंटिंग है, जो उनके ब्लैक एण्ड व्हाइट के सिने दौर को उजागर करती है। वो दो चोटी और माथे पर बड़ी सी बिन्दी लगाकर खुशमिजाज अन्दाज में भी नजर आ रही है। वहीं रंगों के साथ अठखेलियां करते हुए ब्लैक एण्ड व्हाइट को कलरफुल बनाकर भी चित्रकार ने खूबसूरती से प्रस्तुत किया है। एक कृति सुर सरिता जिसमें लता जी के साथ ही तमाम संगीत मंडलियाँ भी शामिल हैं, बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। आप अपनी कृतियों के माध्यम से समाज में सादगी, सात्विकता, संस्कृति को दर्शाने का प्रयास करते हैं।

60 बाई 45 सेमी के कैनवास पर ऑइल कलर से 930 महिलाओं के चेहरे बनाकर लिम्का बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड 2016 का विश्व कीर्तिमान बनाया है। पेंटिंग में बड़ा

चेहरा लता मंगेश्कर का है इनके माथे पर मां सरस्वती का चित्र है लता मंगेशकर के 298 चित्रों के माध्यम से देवनागरी– में लता' शब्द उभरकर आता है। शेष 630 चेहरे विश्व की सुप्रसिद्ध महिलाओं के हैं। ◆

पता : ए–305, ओ.सी.आर. बिल्डिंग, विधानसभा मार्ग, लखनऊ–226001

मो. : 9415508695

कन्नौजी लोक संस्कृति में भैया दूज

❑ डॉ. राजेश हजेला

भारत के समस्त भाषायी अंचलों में, कन्नौज तथा निकटवर्ती भू–भाग में बोली जाने वाली कन्नौजी बोली और इस क्षेत्र की लोक संस्कृति का अपना विशिष्ट स्थान है। उत्सव प्रधान होने के कारण इस संस्कृति ने समूचे देश में अपनी अलग पहचान बनायी है। कन्नौज क्षेत्र में मनाये जाने वाले प्रमुख पर्वों में रक्षा बन्धन और भैया दूज की अपनी अनोखी शैली है। विशेषता यह है कि सम्पूर्ण देश में दीपावली के बाद कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को ही भैया दूज मनायी जाती है जिसे गुजरात और महाराष्ट्र में 'भाऊ बीज' कहते हैं जबकि कन्नौज क्षेत्र में यह पर्व इस द्वितीया के अतिरिक्त होली के बाद चैत्र कृष्ण पक्ष की द्वितीया को भी मनाया जाता है। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि भाई से सम्बन्धित ये दोनों पर्व कन्नौजी लोकमानस के अन्तर्मन की गहराई में रचे–बसे हैं। इस क्षेत्र में, अन्य अंचलों की अपेक्षा, बहनें वर्ष भर बड़े मनोयोग से उपर्युक्त पर्वों की प्रतीक्षा करती हैं और इन दोनों ही अवसरों पर उपवास कर जहाँ एक ओर भाई के ललाट पर दाहिने हाथ के अंगूठे से मंगल–टीका (रोचना) करती हैं वहीं दूसरी ओर भाई के शत्रु की आकृति बनाकर तथा उस पर मूसल से प्रहार करके भाई की सुरक्षा की कामना भी करती हैं।

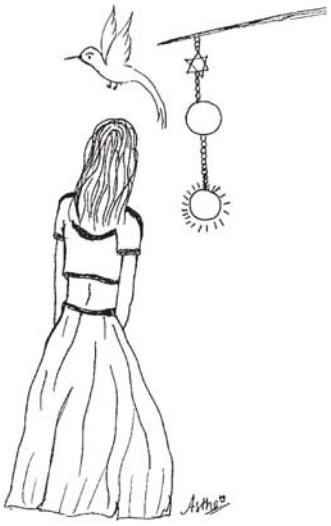

वास्तव में भैया दूज का पर्व कन्नौजी लोक संस्कृति का प्राण–तत्व है। इसमें भाई–बहन का स्नेह–सम्बन्ध अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है। इस अवसर पर बहनें प्रातः काल से ही उपवास करके भाई के कल्याण की कामना करते हुए अपने घर के आँगन को गाय के गोबर से लीप कर चावल के घोल से अल्पना–आलेखन करती हैं। इस वृत्ताकार अल्पना–आलेखन में पूर्व एवं पश्चिम की ओर दो पाटे बनाकर उसमें भाई–बहन की आकृतियां बनायी जाती हैं। इसके साथ ही यम, यमुना, सूर्य और चन्द्रमा के चित्र बनाये जाते हैं। उस वृत्ताकार अल्पना–आलेखन के बाहर प्रतीक रूप में भाइयों के शत्रु की आकृति बनायी जाती है जिसके मुख पर बेर के काँटे रखकर उस पर सकोरा (मिट्टी का बड़ा कटोरा) उल्टा करके रखा जाता है। भाइयों के मंगल–टीका करने के बाद बहनें उल्टा करके रखे गये उस सकोरे पर मूसल से पांच या सात बार प्रहार करती हैं और गाती जाती हैं– "भैया को बैरी कूटो जाय, भैया मेरो बलि बलि जाय"। विशेषता यह है कि इस प्रकार की पूजा मध्याह्न काल में ही होती है और

बहनें भाइयों के निमित्त मंगलकामना करते हुए उनके साथ सायंकाल भोजन करके अपने व्रत का पारण करती हैं।

देखा जाये तो भैया दूज से जुड़ी अनेक दन्तकथाएँ कन्नौजी भाषा के विभिन्न अंचलों में कही–सुनी जाती हैं। इन दन्तकथाओं में भाई और बहन का परस्पर प्रेम–भाव स्पष्ट झलकता है। इस सन्दर्भ में लोक में सर्वाधिक प्रचलित और विशेष महत्वपूर्ण कन्नौजी लोक कथा इस प्रकार है जिसमें भैया दूज की समस्त कोमल भावनाएँ समाहित हैं।

कन्नौज क्षेत्र में मनाये जाने वाले प्रमुख पर्वों में रक्षा बन्धन और भैया दूज की अपनी अनोखी शैली है। विशेषता यह है कि सम्पूर्ण देश में दीपावली के बाद कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को ही भैया दूज मनायी जाती है जिसे गुजरात और महाराष्ट्र में 'भाऊ बीज' कहते हैं जबकि कन्नौज क्षेत्र में यह पर्व इस द्वितीया के अतिरिक्त होली के बाद चैत्र कृष्ण पक्ष की द्वितीया को भी मनाया जाता है। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि भाई से सम्बन्धित ये दोनों पर्व कन्नौजी लोकमानस के अन्तर्मन की गहराई में रचे–बसे हैं।

कन्नौज क्षेत्र के किसी गांव में एक भाई–बहन रहते थे। दोनों में अगाध प्रेम था। एक बार किसी ज्योतिषी ने बहन को बताया कि तुम्हारे भाई के जीवन में तीन बार मृत्यु–योग है। मृत्यु–योग के इन संकटों को सतर्क रहकर टाला जा सकता है। तबसे बहन हर पल भाई के साथ रहने लगी। धीरे–धीरे दोनों भाई–बहन बड़े होने लगे। एक दिन भाई खेत पर जा रहा था तब उनकी माँ ने उनके खाने के लिए सत्तू दिए। बहन ने उन सत्तू को अपने पास रख लिया और भाई को खाने नहीं दिए। खेत पर पहुँचने के बाद बहन ने उन सत्तू में से थोड़े सत्तू कुत्ते को खाने के लिए डाले। उन सत्तू को खाकर जब कुत्ता मर गया तब शेष बचे सत्तू की पोटली को ध्यानपूर्वक देखा गया तो उसमें साँप की केंचुली पायी गयी। इस प्रकार भाई के जीवन का एक संकट टल गया।

जब उसके भाई का विवाह तय हुआ तब बहन ने भाई की निकरौसी (विवाह के लिए वर का घर से प्रस्थान) पुराने दरवाजे से न करने को कहा। बहन के इस हठ का मान रखते हुए दीवार तोड़कर दूसरा दरवाजा बनवाया गया और उस दरवाजे से निकरौसी करायी गयी। इसी बीच पुराना दरवाजा भरभरा कर ढह गया। यह भाई के जीवन का दूसरा संकट था जो बहन के विशेष आग्रह के कारण टल गया।

जब भाई नयी नवेली वधू की विदा करा कर घर लौटा तो बहन प्रथम मिलन की रात्रि में भाई के कमरे में जाकर बैठ गयी। परिजनों और सम्बन्धियों के लाख मना करने और बुरा–भला कहने के बाद भी बहन वहां से नहीं हटी। भैया और भाभी अलग–अलग पलंग पर सो गये। बहन जागती रही। आधी रात को उसने एक काला साँप भाई के पलंग की ओर आते देखा, बहन ने झपटकर उस सर्प को मार डाला और इस प्रकार भाई के जीवन का तीसरा संकट भी समाप्त हो गया। तत्पश्चात वे भाई–बहन सुखपूर्वक रहने लगे। "जैसे वे भाई–बहन सुखी हुए, वैसे ही सभी भाई–बहन सुखी हों" कह कर कथा सुनाने वाली महिला कथा का समापन करती है और इस प्रकार कथा सुनकर बहनें भाइयों के साथ बैठकर भोजन ग्रहण कर व्रत का पारण करती हैं।

इस प्रकार, कन्नौजी लोक संस्कृति की यह लोक कथा दर्शाती है कि भाई–बहन के पारस्परिक प्रेम के वशीभूत बहनें लोकापवाद से विचलित हुए बिना किसी भी सीमा तक जाकर भाई की रक्षा हेतु तत्पर रहती हैं। कन्नौजी बोली की इस बहुप्रचलित लोक कथा से लोकमानस को यह शिक्षा मिलती है कि भाई–बहन के सम्बन्धों में भले ही कोई तात्कालिक गतिरोध या अवरोध उत्पन्न हो जाये तब भी दोनों को संकट के समय उसके निस्तारण हेतु एक–दूसरे के लिए मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिए। यही इस लोक कथा का सार–तत्व है। ◆

पता : 14, हाता करम खां, फर्रुखाबाद–209625
(उत्तर प्रदेश)
मो. : 9450205346

जाग ! तुझको दूर जाना

❑ आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

प्यारेलाल को इस दुनिया से रुखसत हुए अभी साल भर नहीं हुआ है। मालिनी की जिंदगी ताल में बंधे हुए पानी–सी ठहर गई है। पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण उसकी जिंदगी की लय–ताल बिगड़ने में देर न लगी। अधेड़पन में प्यारेलाल का साथ छूट जाना, मानो जिंदगी की तपिश भरी दोपहरी में कठिन चढ़ाई चढ़ते हुए यकायक अकेले बहुत नीचे फिसल जाना है। जहां से खुशहाल जिंदगी की ओर अकेले लौटकर आना मालिनी के लिए आसान नहीं था। लोग लाख समझायें उसे, यह कहकर कि ''प्यारेलाल का बिछुड़ना प्रारब्ध कर्म का लेखा है। इतने ही समय का साथ लिखा–बदा था। ईश्वर की मर्जी के आगे क्या किसी इंसान की चली है? सिर्फ धीरज धरना मनुष्य के अख्तियार में है।'' फिलहाल दुखी मन को समझाने का यही एक तरीका है। परंतु, मालिनी का मासूम दिल प्यारेलाल को भुलाने के लिए अभी तक बिल्कुल तैयार नहीं हुआ था। पहाड़ जैसे इस दुःख से पार पाने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था मालिनी को? ऐसी मनःस्थिति में लहरी की समझाइश भला कैसे काम आ सकती थी?

लहरी उसकी पड़ोसन है। वह पढ़ी–लिखी है। किसी सरकारी आफिस में छोटी–मोटी नौकरी करती है। मालिनी के हर सुख–दुःख में वह साथ खड़ी रहती है। दुःख के भंवर में फंसी मालिनी को बारंबार उसने ढांढ़स बंधाया है। किसी बात पर लहरी ने अपने मर्द सुखिया से यही कहा था– ''प्यारे की यादें स्लेट पर लिखी कोई इबारत नहीं हैं कि जब चाहे लिखा और मिटा दिया। अब तो आखिरी सांस टूटने के साथ ही प्यारेलाल की यादें मिटेंगी। अपने मन को मालिनी भला कैसे समझाए?''

बच्चों की परवरिश, उनकी पढ़ाई–लिखाई, हारी–बीमारी, कपड़े लत्ते, घर–गृहस्थी आदि अनेक जिम्मेदारियां और नाना दुश्चिंताओं ने मालिनी को कई हाथ गहरी चिंता के गर्त में ढकेल दिया था। समय बीतने के साथ उसे अभावों और तकलीफ भरी जिंदगी को ढोते हुए थोड़ी–सी उकताहट होने लगी थी। हाथ–पांव कितना भी चला ले वह, मगर कमाई के नाम पर 'ढाक के तीन पात।' उसे जीविकोपार्जन के लिए किसी स्थायी काम की बेहद जरूरत है। आठ–दस

दिनों की मजदूरी से महीने भर गृहस्थी का खर्च चलाना बहुत मुश्किल है। यदि गृहस्थ के बटुए में कानी–कौड़ी न हो तो कोरी कल्पना की डोर पर संजोए हुए सपने पलभर टिक न पायेंगे। .....ख्वाबों को पलने–बढ़ने के लिए अर्थ का मजबूत आधार जरूरी है। प्रतिकूल परिस्थितियों में किसी व्यक्ति की दबी–घुटी भावनाओं का खिलना सहज संभव नहीं है। यही सबसे बड़ी दुःख है मालिनी के लिए। अभी तक तो अपना दुःख–दर्द भुलाने की उसकी हर कोशिश आकाश से गिरे और खजूर पर अटके वाली साबित हुई। हार न मानने का उसका इरादा बिल्कुल पुख्ता है। लेकिन उसके लिए मुमकिन नहीं हो पा रहा है जिंदगी की गाड़ी खींच पाना।

मालिनी के मोहल्ले से कुछ ही दूरी पर कबीर आश्रम है। कुछ पुराने लोग बताते हैं कि सौ साल पहले एक फकीर आये थे इस इलाके में। वे कबीर के पक्के भक्त थे। इसी शहर में एक बड़े सेठ थे। उनकी कोई संतान नहीं थी तो उसने अपनी सारी दौलत कबीर मठ बनवाने में लगा दी। खुद भी वह कबीरपंथी बन गये थे। इस कबीर आश्रम में नेता, अफसर और साधारण जन सभी आया करते हैं। आस–पास के मोहल्ले के सयाने एवं बुजुर्ग लोगों के लिए कबीर आश्रम ज्ञान और भक्ति से सराबोर होने का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया है। महिलाओं के संग बच्चे भी वहां भजन सुनने और प्रसाद लेने के लिए पहुंचते हैं। यदा–कदा बहुत उद्विग्न मनःस्थिति में मालिनी भी कबीर आश्रम में चली जाती है। पहले तो कभी नहीं गई थी आश्रम। वहां साधु–संतों के बीच पहुंचकर उनकी वाणी सुनकर उसे मानसिक शांति मिलती है। कबीर साहिब के कहे हुए शब्द उसे सांसारिकता से निवृत्ति की प्रेरणा देते हैं– ''हम न मरब मरिहैं संसारा, हमको मिला जियावन हारा।'' मालिनी उस जियावनहार के विषय में नहीं जानती है। इस दोहे का अर्थ वह घर लौटकर अपनी सखी लहरी से समझती है। कबीर की चेतावनी भरी बातें सुनकर उसके मन में कुछ क्षण के लिए वैराग्य भाव भर जाता है।.....पर अगले क्षण बच्चों की चिंता और घरेलू समस्याएं उसे घेर लेती हैं। मन बहुत विचलित हो उठता है। उसे लगता है जैसे जीवन में अंधियारा छा गया है। बहुत कुछ सोचने–विचारकर वह हताश भी हो जाती है। यद्यपि वह जानती है कि ''जीवन की चुनौतियों से भागना उसके लिए संभव नहीं है? विपरीत परिस्थितियों से भागकर वह साधु–संतों के आश्रम में भी नहीं रह सकती है। बच्चे उसके लिए सबसे बड़ी जिम्मेदारी हैं। उसे अपने अस्तित्व के लिए लड़ना है, बच्चों को संभालना है।..... पूरी तरह कमर कसकर। ..... कितनी ही विकट क्यों न हों परिस्थितियां।'' वह जानती है कि ''उम्मीद पर ही यह दुनिया टिकी हुई है। ऊपर वाले की अपेक्षा उसे अपनी कर्मठता और विश्वास पर मन टिकाए रखना होगा।'' अपने भीतर वह विश्वास का रंग भर रही थी।

एक दिन मालिनी की मुलाकात आर्या से हुई। आर्या एक एनजीओ से जुड़ी हुई है। वे दोनों एक–दूसरे से पूर्वपरिचित हैं। उन्होंने एक–दूसरे का कुशल–क्षेम जाना। मालिनी की परिस्थितियों से आर्या बखूबी परिचित है। किसी बात के संदर्भ में प्यारे का जिक्र आया तो मालिनी सामान्य बनी रही। कोई व्यग्रता नहीं दिखाई दी उसकी बातों में।..... उसने आर्या से एक बात कही– ''यह भाग्य का फेर है। हम समस्याओं से कैसे भाग सकते हैं? .....हार मानकर बैठ जाना उचित नहीं है।''

आर्या ने उसे समझाया कि 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'.....फिर मन क्यूं हारे। यह जिंदगी है, हर पल प्रश्नों से घिरी हुई। हर चुनौती का सामना अकेले ही करना होता है। किसी के सहारे जिंदगी कब–तक कटेगी? चुनौतियों से निपटने के लिए हिम्मत जुटाना ही पड़ेगा। ऐसी बातें सुनकर मालिनी की इच्छा शक्ति और हिम्मत बढ़ गई। उसे जीवन की सच्चाई समझ में आने लगी थी।

जीवन की चुनौतियों का सामना करते हुए मालिनी से यह सत्य छिपा नहीं रह गया है कि ''स्वयं पर भरोसा कायम रहे, तभी जीत संभव होगी।'' आत्मविश्वास की पगडंडी पर चलते हुए मालिनी धीरे–धीरे आत्मसजग होती गई। वह कस्बे और शहर में अपनी जान–पहचान के लोगों से मिलती–जुलती है। उनसे अपने लायक कुछ काम दिलाने की बात कहती है।

''देखता हूं।..... कोशिश करता हूं।..... परेशान मत होना।'' जैसे आश्वासन भरे शब्दों के खोखलेपन को वह धीरे–धीरे समझ गई थी। लेकिन प्रयास करना नहीं छोड़ा उसने।.....चुपचाप हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना उचित

नहीं है। ...यह कायरता होगी। ... जिंदगी की लड़ाई में धैर्य की काफी जरूरत है। इस सत्य को वह भली–भांति जान गई है। उसकी बातों में एक गहरा विश्वास झलक उठा है कि जिंदगी के इस अंधेरे पाख में कोई रास्ता अवश्य निकलेगा।

ऊंच–नीच से बेफिक्र होकर मालिनी आगे बढ़ने का रास्ता तलाशने लगी थी। समाज की हर ऊंची व पुरानी दीवारें जो उसके लिए रुकावट बनी हुई थीं और जिसे फलांगने में एक स्त्री के लहुलुहान होने का खतरा ज्यादा है। उसे नजरंदाज करने में उसे अपनी भलाई दिखने लगी थी। हर हालत में उसे मुसीबत के घेरे से बाहर निकलना होगा। शायद वक्त की यही पुकार है।.....वह अकेली है, नौ बच्चों को जिलाये रखने के लिए जीना है उसे, उन्हें अच्छाइयों की ओर ले जाना है। ''ऐसे अनेक विचारों से मालिनी का मन घिरा हुआ था। एक निश्चित निर्णय की ओर मालिनी बढ़ना चाहती है।

यह सच है कि मालिनी को आर्थिक और इमोशनल सपोर्ट देने की स्थिति अभी उसके बच्चों की नहीं है। सबसे बड़ी लड़की है, उम्र यही कोई बारह–तेरह साल। सबसे छोटा यानी नौवां बेटा, जिसके दूध के दांत अभी टूटे ही नहीं हैं।.....प्यारे के यार–दोस्त भी भरोसे के काबिल नहीं हैं।..... सबके–सब पियक्कड़, ऐसे लोगों से क्या उम्मीद की जाये?

ऊंची कोठियों और ऊंचे मकानों की लंबी कतार के पश्चिमी छोर पर पुत्तन चाचा की आलीशान कोठी है।उसके बाजू वाली गली में सात मकानों के पिछवाड़े प्यारेलाल का दो कमरों का एक छोटा सा अधबना मकान है। उसके मकान की बाहरी नंगी दीवारें बरसात के दिनों में लगी काई की परतों से काली पड़ गई हैं।..... पड़ोस में रहने वाले कुछ परिवार उसके गांव और जाति–बिरादरी के हैं। वे मालिनी के दुःख–दर्द में शामिल रहते हैं। यद्यपि आर्थिक सहयोग करने की हैसियत उन लोगों की नहीं है। बहुत कठिन वक्त में किसी ने कभी मालिनी की आर्थिक मदद कर दी हो तो दीगर बात है।

प्यारे की पीने की लत और घर में गाली–गलौज के माहौल से उसके पड़ोसी भी आजिज आ गये थे। इसके बावजूद मालिनी के प्रति सभी की सहानुभूति बनी रही। असल में प्यारेलाल की जान–पहचान के हरेक आदमी की जुबान पर उसके लिए सिर्फ एक ही बात थी– ''पियक्कड़ था। गलत सोहबत में फंस गया और अधेड़पन में ही परलोक चला गया। अभी बहुत कच्ची गृहस्थी है।

अधेड़पन में प्यारेलाल का इस दुनिया से विदा हो जाना पत्नी मालिनी और उसके बच्चों के अतिरिक्त पास–पड़ोस के अधिकांश लोगों को कमोबेश अखर गया था, सिवाय पुत्तन चाचा के। पुत्तन चाचा से उसका बैर क्या था? यह बात सिर्फ प्यारेलाल ही जानता था।.....

यह वर्षों पहले की बात है। दोनों के बीच अनबन की उड़ती हुई खबर पुरुवाई के एक झोंके–सी मुहल्ले में कुछेक लोगों के कानों को छू गई थी। सच बात ठीक से कोई न जान पाया था। दरअसल यह खबर ताश के पत्तों की तरह इतनी बार फेंट दी गई कि उसकी शक्ल–सूरत पहचानना बहुत मुश्किल हो गया था। सही बात सिर्फ पुत्तन चाचा और उसके परिवार को ही पता थी।

जबकि सच्चाई यह थी कि कई बरस पहले पुत्तन चाचा की छोरी को अकेले में छेड़ दिया था प्यारेलाल ने। वह बाल–बच्चेदार था। उस समय बेलगाम जवानी की दहलीज पर प्यारे का पहला कदम बढ़ा था। वैसे भी यह आंच इकतरफा लगी थी। यह मामला मुहब्बत का नहीं, छेड़छाड़ का था। प्यारे ने न आव देखा और न ताव, जवानी जिंदाबाद के जोश में उसका दिल झूम गया था और पहली ही बार में वह चारों खाने चित्त।

पुत्तन के घर में थोड़ा हो–हल्ला मचा, पर बात पुत्तन चाचा की इज्जत की थी, सो इस घटना को अपने दिलों में दफन कर लेने में ही पुत्तन और उनके परिवार ने अपनी भलाई समझा। पुरखों की कमाई हुई इज्जत के लिए मर–मिटने का जुनून होते हुए भी पुत्तन चाचा ने इस ओछी हरकत पर पर्दा डाल देना उचित समझा था। गनीमत यह रही कि मोहल्ले में प्यारे ने भी इस घटना को लेकर अपनी शेखी नहीं बघारी, वरना बात पुलिस–थाना तक बढ़ जाती और यह प्यारे के हक में कतई नहीं होता। उसे जेल की हवा खानी पड़ती। पुत्तन पहुंच वाले आदमी हैं। नेताओं और

पुलिस के अफसरों के साथ उठना–बैठना है उनका। चाहते तो एक मिनट में प्यारेलाल को तड़ी पार करा देते। लेकिन अपने घर की इज्जत–आबरू किसे प्यारी नहीं लगती, सो वे भी दांत भींच कर चुपाये बैठे रह गये। एक चुप, हजार चुप।

पुत्तन चाचा कारोबारी आदमी ठहरे, झगड़ा–झंझट से कोसों दूर, अपना मूंड़ खपाने के फेर में फिर कभी नहीं पड़े वे। हां, बेटी के बाप का दिल जरूर कई बार बुरी आशंका से धड़कने लगा था, लेकिन दिल पूरा धड़क भी नहीं पाया। प्यारेलाल को सबक सिखाने के लिए पुत्तन का दिल हुंमस–हुंमस कर शांत रह गया। जैसे समंदर का पानी, ज्वार–भाटा आने के बाद शांत हो जाता है। बदनामी का दाग लगने के भय ने पुत्तन को सबसे ज्यादा चिंता में डाल दिया था। आखिर एक डूबती हुई शाम, प्यारे से पुत्तन का आमना–सामना मोहल्ले के बाहर हो ही गया। पुत्तन ने प्यारे को ऐसा हुरपेटा कि उसकी अकल ठिकाने लग गई। पूंछ दबाकर प्यारे दुबक गया था। उसकी सिट्टी–पिट्टी गुम हो गई थी।

तब से प्यारेलाल नजरें बचाकर चलने लगा था। पुत्तन चाचा के दिल को थोड़ा ठंडक पहुंची। लेकिन, बात पुत्तन चाचा के करेजे में इंच भर घुस गई थी। प्यारे के जिंदा रहते सालती रही पुत्तन के जिगर को। अब प्यारे ही नहीं रहा तो किस्सा खत्म। दिल का सारा मलाल बुता गया था। घाव के निशान भर बाकी रह गये थे, जो न चाहकर भी पुत्तन चाचा के कलेजे में करक जाते थे।

दिसंबर की वह सर्दीली सुबह। धूप की ऐसी–तैसी कर दी कोहरे ने। पूरा शहर कोहरे की चादर तानकर बैठ गया था। इस ठिठुरन भरे मौसम में अलाव जलाकर बैठना हर किसी की चाहत थी। पर साधन के अभाव में हर किसी के लिए अपने घर में अलाव जलाकर बैठना संभव नहीं हुआ। ऊंची कोठियों में हीटर की गरमी से लोगों की दुबकी हुई सांसें चल रही थीं।

ऐसे ही एक दिन, पुत्तन चाचा के कदम प्यारे के घर की ओर बढ़ गये। उस समय मालिनी अपने घर के बाहर द्वार पर सफाई कर रही थी। यह देखकर मालिनी को आश्चर्य हुआ कि पुत्तन चाचा बड़े सधे कदमों से उसके घर की ओर चले आ रहे हैं। उन्हें देखकर मालिनी की याददाश्त में पैबंद की तरह चस्पा पुत्तन चाचा की लड़की से जुड़ा पूरा प्रसंग स्मृतियों में कौंध उठा था। वे स्मृतियां सुखकर कदापि नहीं थीं। उसने देखा कि पुत्तन चाचा बिना रोक–टोक घर की ओर बढ़ते चले आ रहे हैं।

झाड़ू लगाना छोड़कर मालिनी अपने घर की ड्योढ़ी पर आकर खड़ी हो गई। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि पुत्तन चाचा उससे मिलने आ रहे हैं। वह कुछ और सोच पाती कि पुत्तन चाचा एकदम मालिनी के सामने खड़े हो गए थे। मालिनी ने शिष्टाचार निभाया और दोनों हाथ जोड़ लिया। पुत्तन चाचा भी कहां पीछे रहने वाले थे, झट से मुंह खुला और आशीर्वाद दे डाला। बाहर खड़े–खड़े पुत्तन ने प्यारे के प्रति मालिनी से गहरी संवेदना व्यक्त की और लौटते हुए कहा– ''हारे गाढ़े वक्त कोई जरूरत होगी तो बता देना... .संकोच मत करना।..... पड़ोसी होकर कुछ तो हमारा धर्म है।'' पुत्तन चाचा देर तक वहां नहीं रुके। अपने हाथ में लिया पैकेट मालिनी को थमाकर अपने घर की ओर रुख किया। कुछ कहने का मौका ही नहीं दिया मालिनी को। पुत्तन चाचा के इस व्यवहार से मालिनी बहुत हतप्रभ हुई।

मालिनी घर में आई और पुत्तन का दिया हुआ पैकेट खोला, उसमें चाकलेट भरा हुआ था। बेटा मिठौआ खिड़की से बाहर झांक रहा था। सारे बच्चे घर में ही थे। मालिनी को बच्चों ने घेर लिया था। जैसे वह कोई जादूगरनी हो और पैकेट से कोई अजूबा चीज निकाल रही है। पैकेट खोलकर उसने पूरी उत्सुकता से देखा। उसमें चाकलेट भरा हुआ था। बच्चों के हाथ में एक–एक चाकलेट थमाकर मालिनी खुद खाना बनाने की तैयारी में लग गयी। चाकलेट खाने का उसका भी मन हो गया था। पैकेट में अभी पांच चाकलेट बचा हुआ था। चाकलेट का आस्वाद लेते हुए मालिनी का मन पुत्तन चाचा की उदारता को सराहने लगा था। किंतु, दूसरी ओर...उसे लगा कि पुत्तन चाचा की सांत्वना के बोल में स्वार्थ की गंध छिपी न हो? यह सोचकर मालिनी एक क्षण के लिए भयभीत हो गई। पूरा बदन सिहर उठा था।

उस दिन की शाम के झुटपुटे में, मालिनी अपने घर की दहलीज पर बैठकर आने वाले दिनों की चिंता में डूबी हुई

थी। वह शाम मुंह छिपाए दुल्हन–सी धीरे–धीरे सरक गई और रात ने अपना काला आंचल तान दिया था। अंबर भी चंदोवा ओढ़े बैठा था। मालिनी को समय का तनिक भी भान न रहा।उस समय अकेलापन भी उसके लिए बहुत कारसाज सिद्ध हो रहा था। वह ऊंच–नीच सोचने लगी थी। बे–सिर–पैर की बातें सोचकर वह बहुत बेचैन थी।..... थोड़ी देर बाद..... अपने मन को झिड़कते हुए मालिनी ने कहा–

''अरे ! कितना बावला है रे तू, अपनी हद में रह। प्यारे की जगह कोई और ले ले।..... नहीं नहीं..... यह कैसे हो सकता है?..... लेकिन बात बन भी सकती है? कितने फिर रहे हैं आज भी। कुछ चेहरे ध्यान में आये..... छिः छिः छिः..... एक भी लायक नहीं..... और भी बातें..... उसके मन के आकाश में काले बादलों–सी उमड़–घुमड़ रहीं थीं।'' उसने अपने मुरझाए मन में झांककर देखा, कोई अच्छी सूरत नजर नहीं आई।'' वास्तव में मालिनी के हृदय की धड़कनें पहले वाले प्यारेलाल के लिए आज भी धड़क रही हैं।..... दिनभर की धमाचौकड़ी और स्कूल की पढ़ाई से थककर छोटे बच्चे नींद के हवाले हो गये थे। बड़े बच्चे होमवर्क में मिले गणित के सवालों से उलझे हुए थे। मालिनी की आंखों में नींद अपना अता–पता भूल गयी थी। बिस्तर पर लेटे हुए मालिनी अच्छी–बुरी यादों में खो गई। बहुत देर के बाद नींद का एक लंबा झोंका उसकी आंखों में उतर आया था।

यह बात उन दिनों की है जब प्यारेलाल शराब के लिए बेचैन रहने लगा था। वह आदतन शराबी हो गया था। आये दिन घर में चखचख और झूमा–झटकी। हर समझाइश बेअसर थी उस पर। प्यारे का शराबीपन मालिनी के लिए सिरदर्द बन गया था।

बहुत लायक तो कभी नहीं रहा है प्यारेलाल। शादी के शुरुआती दो–चार वर्षों को छोड़कर। वे दिन बहुत शर्मीले थे। मालिनी के रंग–रूप का जादू उस पर ऐसा चढ़ा था कि वह अपना होशोहवास खो बैठा था। आये दिन रोजी–रोटी से बेफिक्र उसके कदम घर की चौखट पर ही अटक जाया करते थे। पूरा घरघुसुरा बन गया था वह। घर में बड़े–बुजुर्ग होते तो समझाते उसे कि ''यह पेट बहुत पापी है।..... इस लल्लो–चप्पो से कभी नहीं भरेगा।..... रोजी–रोटी की चिंता से बचा नहीं जा सकता है।''

मालिनी रूप–रंग में थी ही ऐसी कि प्यारेलाल ही क्या? मुहल्ले में जिसने भी उसे देखा, आंखें चमक उठीं उन सबकी। कुछेक युवकों के दिल में तो सांप लोटने लगा था। उन दिनों काजोल और शाहरूख खान की फिल्म 'दिलवाले दुल्हनिया' की चर्चा जोरों पर थी। नयी उम्र के लड़के दिल थामकर टाकीज से फिल्म देखकर निकलते और अपने ख्वाबों में काजोल की कल्पना कर स्वयं को शाहरुख खान समझने लगे थे।

मुहल्ले के दो–चार शोहदा किसिम के लड़कों को मालिनी में काजोल की शक्ल दिखाई दी। फब्तियां कसते हुए वे लड़के घर के सामने से निकल जाया करते थे। एक लड़का कहता है– ''गजब.....हिरोइन माफिक ।एकदम काजोल की ट्रू कापी। दूसरा लड़का–क्या किस्मत पाई प्यारेलाल ने। तीसरा बोल पड़ा–मिल जाय बस एक बार..... इलू इलू।'' चौथा साथी– ''कितनी जानदार लौंडिया है।'' मालिनी में काजोल की कल्पना कर लार टपकाने वाले लड़कों की संख्या मुहल्ले में आठ–दस हो गई थी।

उन ढीठ लड़कों के मुंह से अपनी घरवाली के लिए कहे गए अपशब्दों को सुनकर प्यारेलाल तिलमिला गया था। कइयों से लड़ते–भिड़ते बचा था वह। मालिनी पर घर से निकलने की पाबंदी लगा दी। जब तक गोद हरी–भरी नहीं हुई मालिनी घर में बैठी रह गई। परिवार बढ़ने लगा और आमदनी अठन्नी भर। चादर छोटी, पांव खुल जाते थे। आखिर कब तक मालिनी का मुंह देखकर तीमारदारी और पहरेदारी कर पाता प्यारेलाल। पेट की खातिर घर से निकलना मजबूरी थी दोनों की। जेब में कानी कौड़ी न हो, मन को बहला–फुसलाकर जिंदगी की गाड़ी लंबी नहीं खिंच सकती है। शादी के चार–छह महीने बीते होंगे, पैसे की कड़की के दिन मालिनी के देह सुख पर भारी पड़ने लगे थे। प्यारेलाल का बौराया दिल बहुत समय तक मालिनी के रूप–रंग पर टिक नहीं पाया। भादों की पहाड़ी नदी की माफिक उफनाया प्यार का सुरूर जल्द उतरने लगा था। प्यारेलाल की समझ में आ गया था कि जिंदगी की चुनौतियों से भागकर जिया नहीं जा सकता है। स्मृतियों के उजलेपन से मन के अंधेरे को कब तक ढंका जा सकता है?

समय सरकते देर नहीं लगी। मालिनी के जीवन का हर पल पानी पर खिंची लकीर सा मिटने लगा। उसका मन एक हद के बाद दुःख से मुंह चुराने लगा था। दिल बहलाने के लिए उसने रेडियो खोला..... फिल्मी गीत आ रहा था– 'जिंदगी तो बेवफा है एक दिन ठुकरायेगी.....' गीत सुनते हुए मालिनी को प्यारेलाल की बेवफाई के किस्से याद आने लगे थे। प्यारे के संबंध में लोगों की अनाप–शनाप बातें सुनकर अब उसके कान नहीं पकते हैं। प्यारे की स्मृतियों में डूबती–उतराती हुई वह कब बाहर आ गई, उसे पता ही नहीं चला। वह सोच रही थी–

''प्यारे के नसीब में जीवनभर का साथ नहीं बदा था। अपने करतब की सजा उसे मिल गई। लेकिन दुखी कर गया जीवन भर के लिए हमें।''

प्यारे के गुजर जाने के बाद लोगों के मुंह खुल गए थे और सिर्फ एक ही बात निकलती थी– ''मालिनी और उसके ढेरों बच्चों का क्या होगा? बड़ा नालायक निकला प्यारेलाल। पियक्कड़ी का भूत ऐसा सवार हुआ कि जान से हाथ धो बैठा।'' लोगों के ऐसे बोल गर्म लू के झोंके की मानिंद मालिनी के दिल को अब नहीं झुलसाते हैं। समय गुजरने के साथ लोगों की कटु बातें अब उसके दिल पर बेअसर हो गई थीं। यद्यपि दिल पर लगे जख्मों के निशान दिखाई नहीं देते हैं, पर होते हैं बहुत गहरे। प्यारेलाल था ही ऐसा। अपने ही परिवार में उसकी अहमियत घट गई थी। बोल–कुबोल कहने वालों को कौन रोक सकता है? यही कुल जमा कमाई थी प्यारेलाल की, जो मालिनी की स्मृतियों की तिजोरी में बंद थी।

अपनी जिंदगी के बुरे वक्त में मालिनी को अनायास वे दिन बहुत याद आते हैं। बरसात की रात में टूटी छाजन टपकने जैसा तकलीफदेह बनकर। इतनी जल्दी यादों में बुरे वक्त की धंसी कीलें निकालना संभव नहीं था उसके लिए। बुरी यादों से पिंड छुड़ाना किसी के लिए भी इतना सरल नहीं होता है। मालिनी की क्या बिसात?

यादें.....पिछले दिनों की.....मालिनी को आज भी बहुत मायूस कर जाती हैं। न चाहकर भी पिछले बुरे दिन उसे याद आ ही जाते हैं। जब प्यारेलाल को लेकर मालिनी जिला अस्पताल में डाक्टर मलिक के चैम्बर में तीसरी बार पहुंची थी। तब सारी जांच रिपोर्ट देखकर डाक्टर मलिक ने चेतावनी भरे लहजे में कहा था– ''क्या कहूं, तुमने बहुत देर कर दी।'' मालिनी की सांसें डाक्टर के शब्दों पर अटक गई थी। (एक गहरी निस्तब्धता)

डाक्टर मलिक ने बुझे स्वर में कहा था– ''लीवर कैंसर है।..... लास्ट स्टेज।'' अफसोस जाहिर करते हुए वे क्लीनिक से बाहर निकल आये थे। उन्हें पेशेन्ट देखने के लिए हास्पिटल के कैंसर वार्ड में जाना था।

मालिनी के पैर के नीचे से धरती खिसक गई। उसे चक्कर आ गया। दिन में ही तारे नजर आने लगे थे। चलते–चलते डॉक्टर मलिक से उसने जानना चाहा था– ''डॉक्टर साहब ! बचने की कोई उम्मीद? हमारे लिए आप तो भगवान हो, बचा लो।'' गहरी मायूसी मालिनी के चेहरे पर झलक आई और आंखें डबडबा गईं।

डॉक्टर मलिक– ''नहीं! अब कोई उम्मीद नहीं रह गई। बहुत देर हो गई है। हमारे हाथ में कुछ नहीं रह गया है।'' यह अंतिम वाक्य कहते हुए डॉ. मलिक का हाथ कार की स्टेयरिंग पर था और कार स्टार्ट होकर आगे बढ़ चुकी थी।

डॉ मलिक की बातें सुनकर मालिनी को काठ मार गया। निराशा के घनघोर अंधेरे में प्यारे की जिंदगी की लौ बुझ जाने की बात से मालिनी डर गई थी। जैसे किसी बियाबान में भटके राही को कोई राह नहीं सूझ रही हो। उसके दिल की धड़कनों ने जैसे जवाब दे दिया हो।..... एकदम अवाक..... जुबान नहीं खुली..... आंखें पसीज आई थीं।

डॉक्टर मलिक की हर बात मालिनी बड़े गौर से याद करने लगी थी। जब डॉक्टर ने कह दिया था– ''लीवर ट्रांसप्लांट करवाना संभव नहीं है। बहुत महंगा ट्रीटमेंट है। ''मालिनी के लिए तो आकाश के तारे तोड़ लेने जैसा। डॉक्टर मलिक ने यह भी कहा था– ''ईश्वर को याद करो.... ये दवाएं हैं..... बहुत देर कर दी तुमने.....।'' प्यारेलाल की आंखें तो नहीं, पर मालिनी की आंखें बरसने लगी थीं।

आज फिर एक बार, डॉक्टर मलिक की कही हुई बातें मालिनी के दिल को कचोटने लगी थीं। अपनी बेबसी पर चुप रहने के सिवा कोई चारा नहीं था उसके पास उन दिनों।

प्यारेलाल के साथ बिताए गए दो दशकों में अच्छे दिनों की संख्या बहुत थोड़ी–सी थी। खासतौर पर जब नई–नवेली दुल्हन सी मालिनी अपनी ससुराल में आई थी। फिर जब संतानोत्पत्ति क्रम जारी हुआ तब प्यार– दुलार के खुशनुमा दिन हवा हो गए। सिर्फ जिल्लत और तंगहाली, लड़ाई–झगड़ा, गाली–गलौज, घर के बवाल। इसी माहौल में बच्चों की पैदाइश हुई। एक दो नहीं, पूरे नौ बच्चे। कहने वाले की जुबान कौन पकड़ सकता है? गरीबी भोगना बदा है उसे। जेब में धेला नहीं, चला है पैदावार बढ़ाने।'' पड़ोसी यदु की यह बातें सुनकर मालिनी बहुत खिसियाई थी। यदु भी मजूरी करता है उसके दो ही बच्चे हैं। यदु की घरवाली लखिया ने भी मालिनी को बहुत समझाया था कि वह औलाद पैदा करना बंद करे। मालिनी गुरमुसा कर रह गई। लखिया के साथ जब मालिनी मजूरी के लिए सेठानी की कोठी में जाने लगी थी तब सेठ ने भी उसे टोका था कि ''मालिनी तेरी सेहत को क्या हो गया है? इतनी जल्दी–जल्दी बच्चे?..... सेहत की चिंता जरा सा भी नहीं है। कमजोरी एक बार घुन की तरह शरीर से चिपक गई, दम लेकर रहेगी।'' यह सुनकर मालिनी अवसाद से घिर गई थी। लखिया ने बहुत समझाया– ''बहन! बहुत हो गया। सोच–समझकर आगे कदम बढ़ाना। इन सांड़ मर्दों की जिद के आगे औरत खूंटे में बंधी गाय की तरह हैं।''

आर्या अक्सर मालिनी के पास आती है और उसे दीन–दुनिया, ऊंच–नीच के बारे में समझाती है और खबरदार भी करती है। मालिनी को वह सरकारी मदद दिलाने का भरोसा भी देती है। विधवा पेंशन का फार्म उसी ने भरवाया था। प्रतिमाह रूपये मालिनी के खाते में आने लगे हैं। खुशी की एक स्मिति उसके चेहरे पर खिल गई है।

अभी पिछली शाम, आर्या अपने स्कूली दिनों के हिंदी टीचर ब्रजनंदन सहाय के साथ मालिनी से मिलने उसके घर आयी। सहाय सर शहर के स्कूल में हिंदी अध्यापक हैं और नगर की समाजसेवी संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। लोगों के सुख–दुःख से उनका इंसानियत का वास्ता है। दुर्भाग्य से घिरी हुई मालिनी की चिंता उन्हें चैन नहीं लेने देती है। ब्रजनंदन और आर्या के मकान भी इसी मुहल्ले में पार्क के पास वाली लेन में हैं। लगभग मालिनी के पड़ोस में।

आर्या ने मालिनी के घर पहुंच कर दरवाजे की कुंडी खटखटायी और आवाज दी– ''मालिनी! ओ मालिनी दीदी!! अरे ! ''दरवाजा खोलो! गुरु जी आये हैं।'' मालिनी ने झटपट दरवाजा खोला और अभिवादन कर सहाय सर और आर्या को घर के अंदर ले गई। छोटा सा कमरा, उसमें एक किनारे पुराना तखत पड़ा हुआ है। कोने में पुराना स्टूल रखा है। मालिनी अलगनी पर डली चादर लेकर आईं और तखत पर बिछा दिया। सहाय सर और आर्या तखत पर बैठ गए। बाहर खेल रहे मालिनी के नौ बच्चे एक–एक कर उसी कमरे में समां गए थे। जैसे वह छोटा सा कमरा कोई जादू का पिटारा हो। आर्या और सहाय सर मालिनी के बच्चों की हालत देखकर बहुत उदास हुए। बच्चों के चेहरों पर पुती उदासी, रूक्षता और देह पर कपड़ों की हालत देखकर उनका दुखी होना स्वाभाविक है। मालिनी के सुंदर सलोने चेहरे पर दुःख और गरीबी की गहरी छाया ऐसी उतर आई है कि जैसे चांद को राहु ने ग्रस लिया हो। पर यहां तो परमानेंट राहु चांद को ग्रसे हुए था।

मालिनी झट से दूसरे कमरे में गई और वहां एक कार्नर पर बने प्लेटफार्म पर रखे गैस चूल्हे को जलाया और चाय बनाने का उपक्रम करने लगी थी। आर्या ने मालिनी को चाय बनाने से रोका। चाय के अतिरिक्त उसके पास और कुछ नहीं था सत्कार के लिए। सहाय सर ने भी चाय के लिए मना कर दिया। वे चाय पीते ही नहीं थे। मालिनी एक पटा लेकर नीचे बैठ गई। आर्या और सहाय सर थोड़ी देर तक गुमसुम बैठे रहे। आर्या ने ही सन्नाटा तोड़ा। वह बोली– ''मालिनी दीदी! कैसी हो तुम? क्या बच्चे ठीक से पढ़–लिख रहे हैं। मालिनी बहुत उदास मन से बोली– हां दीदी! ....

(दबे मन से) हम तो गैर पढ़े–लिखे लोग हैं। सो दुनियादारी की समझ नहीं है हमें। खर्चा बहुत है जेब में कानी कौड़ी नहीं। बच्चों को ट्यूशन लगाने की औकात कहां से ले आएं। ..... सरकारी स्कूलों के हाल तो आप जानत हो, मास्साब!'' ब्रजनंदन सहाय के पास कोई जवाब नहीं था। उनसे अधिक कौन जानता है सरकारी स्कूलों का अंदरूनी हाल।

आज पहली बार सहाय मास्टर साहब के समक्ष मालिनी ने अपने दिल के दरवाजे की कुंडी खोल दी थी। भरभराकर दुःख और जिल्लत भरी बातें सनसनाते हुए तीर की तरह दिल से निकल आयीं। मालिनी के पीड़ा भरे शब्दों को सुनकर आर्या और ब्रजनंदन बहुत द्रवित हो गये।..... मालिनी अपना दुख–दर्द आखिर कितनी देर तक बतिया सकती थी। इसके सिवा उसके पास बतियाने को कुछ था भी नहीं। मालिनी की बातचीत सुनकर आर्या को क्षण भर के लिए लगा कि ''..... प्यारेलाल की मौत से जैसे मालिनी किसी बड़े अभिशाप से मुक्ति पा गई हो। .....सच है कि रोज–रोज की कलह, किचकिच, शराब पीकर मारपीट से उसे मुक्ति मिल गई है। सबसे बड़ी मुक्ति बच्चा पैदा करने से मिल गई। वह संत्रस्त थी प्यारेलाल के सेक्सीपन और पियक्कड़पन दोनों से। देहसुख के लिए वह हरदम बौराया रहता है।''..... बच्चों के बारे में भी जानकारी ली आर्या ने। ब्रजनंदन ने मालिनी को सांत्वना दी और सहायता का आश्वासन देकर उसके घर की चौखट से निकलने को हुए। बच्चों ने उन्हें घेर लिया था। सहाय सर ने बड़ी लड़की के हाथ में सौ का एक नोट पकड़ाया, यह कहते हुए कि बच्चों को कुछ खिला देना।

उसी बीच अकस्मात् ललाइन चाची आ टपकीं। वे मालिनी की पड़ोसन हैं, किन्तु उनका आना मालिनी को तनिक भी अच्छा नहीं लगा। ललाइन चाची अक्सर इसी तरह प्रकट होती हैं। मोहल्ले में किसी के भी दुःख और सुख के क्षणों में। लोगों की बातें सुनकर उसमें नमक मिर्च लगाकर पेश करने की आदत से बाज नहीं आती हैं। कितनी बार वे अपमानित भी हुई हैं। लेकिन बात का बतंगड़ बनाना नहीं छोड़ा उन्होंने।

मालिनी के घर से निकलते हुए आर्या ने उसे बड़े दार्शनिक अंदाज में समझाया– ''वक्त के साथ पहाड़–सा यह दुख धीरे–धीरे घट जाएगा। जिंदगी की गाड़ी फिर से चलानी ही पड़ेगी। हार मानना ठीक नहीं है, अच्छा तो यही है कि अपनी कमर कस लो, हिम्मत से काम लो। इस सच को जानो–जो आया है वह जाएगा राजा, रंक और फकीर। .. ...फिर डर काहे का।''

इस विचार को सुनकर मालिनी का विश्वास दृढ़ हुआ। मानसिक तौर पर वह अपने को तैयार करने लगी थी, जीवन की नयी पारी के लिए।

ललाइन चाची रुकी रहीं। सबके हाव–भाव और नजरें ताड़ती रहीं, लोगों की बातें सुनती रहीं, किसी पेशेवर जासूस की तरह। आर्या भी कम होशियार नहीं है, पलभर में वह पहचान गई ललाइन की कारस्तानी।

प्यारेलाल दुनिया से रवाना हो गया, चाची के लिए मालिनी के घर का द्वार खुल गया। खुल जा सिमसिम की तर्ज पर। पर चाची अलीबाबा नहीं है। चालीस चोरों में एक हैं, मुहल्ले की औरतें खासतौर पर जानती हैं।

चाची का मालिनी के प्रति लगाव दिन–दूना रात चौगुना बढ़ता गया है। जब भी कोई अपरिचित औरत या पुरुष मालिनी के घर मिलने आता है तब ललाइन चाची की ताक–झांक जरूरत से ज्यादा बढ़ जाती है। वह आदतन मजबूर हैं। मालिनी के घर आने वाले लोगों की आवाजें घर की दीवारें भेदकर ललाइन चाची के कान के पर्दे को अवश्य भेद दिया करती हैं। ललाइन चाची मुंहफट और दकियानूसी ख्यालात की औरत हैं। पचास पार करते हुए ललाइन चाची की खुराफाती आदतें और बढ़ गई हैं। वह घर में अकेली हैं। पति का साथ पहले ही छूट गया है। वह निःसंतान हैं। मीन–मेख निकालने की उनकी आदत उम्र बढ़ने के साथ परवान चढ़ती गई है। वह बेमुलाहिजा सबके सामने ही न जाने क्या–क्या चुभती हुई बात बोल दें, कोई भरोसा नहीं है उनका। लोगों की बातें उनके पेट में पचती नहीं हैं, मरोड़ उठने लगता है। पूरा मुहल्ला उनकी इस आदत से वाकिफ है।

ललाइन चाची जब अपने फुलफार्म में होती हैं तब वे किसी मर्यादा और सामाजिक दबाव–प्रभाव में नहीं होती हैं। इस वक्त, जब ब्रजनंदन और आर्या द्वार पर खड़े हैं, तब मालिनी की ओर मुखातिब होकर ललाइन चाची नानस्टाप बोलने लगी थीं।

''अपनी जिंदगी क्यों खराब करो। उम्र ही क्या है अभी? पैंतीस बरस। इस उम्र में तो लड़कियों की शादी होती है आजकल।..... सुख–भोग, काया का सुख.....कैसे सधेगा जीवन। औरत हो या मरद.....। ''कहते हुए ललाइन चाची थोड़ा झिझकीं, पर बोले बिना नहीं रहा गया उनसे।''

मालिनी सुनती रही ललाइन चाची की बेतुकी और अनगढ़ बातें। चाची की अंतिम बात मालिनी को बहुत अटपटी सी लगी।

''काया का सुख?..... बहुत पेरता है मन को।..... कितना मुश्किल है इससे बच कर रहना? विश्वामित्र जैसे ऋषि भी नहीं बच पाए। मेनका पर दिल आ गया था उनका।''

चाची की ये बातें मालिनी के दिल में कहीं घरकर गईं। उसके मन की थाह लेने के लिए ललाइन चाची ने गजब का पांसा फेंका था। मालिनी के दिल में चिंहुकन हुई। उसके मन में अभी प्यारेलाल की थोड़ी–बहुत देहगंध बची हुई थी। आगे क्या होगा? क्या भरोसा? राम ही जानें?

समय की रफ्तार में बड़े से बड़ा दुःख सिमटने लगता है। मालिनी को समय ने नये सिरे से जिंदगी जीना सिखा दिया था। तीन बच्चियों और छः बेटों यानी कुल नौ बच्चों के पालन–पोषण का बोझ लिए मालिनी जीने का हुनर और जुगाड़ बिठाने का हर संभव उपाय करने लगी थी। उसके लिए सफलता अभी दूर की कौड़ी थी। बच्चों के पालन–पोषण और पढ़ाई–लिखाई, कपड़े, दवा आदि की चिंता से मालिनी का धैर्य कभी–कभी डिगने लगता है। अक्ल गुम हो जाती है। फिर भी, हिम्मत की डोर मजबूती से पकड़े हुए है वह।

झंझावात भरी स्मृतियों की गैल में अब मालिनी ज्यादा देर तक उतरना नहीं चाह रही थी। उसने अपनी दुखियारी जिंदगी के दो–चार डग भरे, पर मन थका अनुभव करने लगा था। उसके जीवन में अच्छी यादें कम हैं। बुरी यादें बार–बार उसे पीछे धकेलती रहती हैं और वह पछाड़ खाकर संभलने की कोशिश करती है। बुरी यादों से बाहर निकलना वक्त के हाथों में है, वह लाचार है। उसकी क्या बिसात?

यह शहर के उस मुहल्ले का किस्सा है जिसमें मास्टर ब्रजनंदन सहाय रहते हैं। उन्हें मालिनी और उसके परिवार की बातें भला कैसे न पता होतीं। मालिनी से ही उन्हें पता चला था कि प्यारेलाल की आदतें बिगड़ गई हैं। उसे पीने की लत लग गई है। ब्रजनंदन ने प्यारे लाल को कितनी बार समझाया था, लेकिन प्यारेलाल की अक्ल पर मानो पत्थर पड़ गया था। वह ब्रजनंदन बाबू की बातें इस कान से सुनता और दूसरे कान से निकाल दिया करता था। प्यारेलाल का दिल–दिमाग उसके वश में नहीं रह गया था। एक बार तो ब्रजनंदन से उसका टकराव भी हो गया था।

''रहने दीजिए मुझे समझाने को। ज्यादा मास्टरी मत झाड़िए। अपना घर संभलता नहीं है, दूसरों को समझाने चले हैं।''

ब्रजनंदन बाबू एक चुप हजार चुप। उफ तक नहीं की उन्होंने उस दिन। प्यारेलाल की बातें ब्रजनंदन को नश्तर की तरह चुभ गई थीं। उन्होंने कसम खा ली कि अब भूल से भी कभी प्यारे को समझाने की कोशिश नहीं करेंगे। सपने में सोचेंगे भी नहीं। ब्र जनंदन खूब समझ गये थे कि अब तीर कमान से निकल चुका है। मति मारी गई है प्यारेलाल की। विनाश को आमंत्रित कर लिया है उसने।

शरद ऋतु की चौखट पर समय टकटकी लगाए हुए था। दिन छोटे होने लगे थे और रातें लंबी। उन्हीं दिनों कस्बे में नसबंदी शिविर लगा हुआ था। घर–घर सूचना पहुंचाई गई थी। तब प्यारे लाल जिंदा था। मालिनी को भी सूचना मिली। पर वह नसबंदी कराने नहीं गई। किसी ने डरा दिया उसे कि नसबंदी से स्वास्थ्य प्रभावित होता है। आपरेशन के बाद गैस्टिक ट्रबल की समस्या आती है। प्यारेलाल अपनी और न ही मालिनी की नसबंदी के लिए तैयार हुआ। बच्चों को कुदरत की देन मान लेने की कीमत मालिनी को चुकानी

पड़ी थी। लेकिन, यह बात समझने में मालिनी ने भी बहुत देर कर दी। पांचवीं डिलिवरी होने के दौरान सिस्टर मरियम ने उसे बहुत समझाया था– ''मालिनी, यह क्या कर रही हो? बच्चे पैदा करने की मशीन नहीं हो तुम। चार बच्चे पहले से ही हैं। लड़का पैदा करने के चक्कर में पड़ गई हो तुम। यह ठीक बात नहीं है।''

मालिनी निरुत्तर थी। अपनी इस गलती को नकारने का कोई उचित कारण भी नहीं था उसके पास। सिर्फ इतना बोली– ''मैं क्या करती? उन्हें कौन समझाता? कौन लड़ाई करता? मेरे वश में नहीं था उन्हें रोक पाना।''

यह सुनकर सिस्टर मरियम बहुत दुखी हुईं। जाते–जाते उन्होंने कहा था कि ''ऐसे अनपढ़ और जाहिल पुरुष के साथ जिंदगी काटना आसान नहीं है। वे बहुत बुरे होते हैं और खतरनाक भी।''

मालिनी चुप रह गई थी। वक्त की नजाकत को वह भांप नहीं पाई और अब पश्चाताप के आंसू बहाने से गुजरा हुआ वक्त लौटकर नहीं आयेगा। अपनी करनी का फल मालिनी को भुगतना ही था। वह बेचारी क्या करती? मर्द से मोर्चा लेना उसके वश में नहीं था। शुरू में विरोध किया था उसने। सेक्स का भूत चढ़ जाने पर प्यारे को समझाना संभव नहीं था। तब समझदारी नहीं आई थी मालिनी को। बालिग नहीं हुई थी वह, जब ब्याह दी गई थी प्यारे संग। एक बेटा के बाद धड़ाधड़ तीन बेटियां पैदा हो गईं और बेटे की चाहत तीव्रतर होती गई। बड़ी मान–मनौती के बाद कहें, या दैवयोग से बेटा पैदा हुआ, फिर तो लगातार पांच बेटे, नान स्टाप गेम। संतान जनने का सौभाग्य मिला मालिनी और प्यारे को। किंतु, खुशियों के इस सैलाब में प्यारेलाल की आर्थिक नैया डूब गई। वह कर्ज के भंवर में फंस गया था। घर का खर्च चलाना मुश्किल हो गया। बच्चों की पढ़ाई, कपड़े, खाना, दवा आदि के लिए धन कहां से जुटाए? नौ बच्चों की जिम्मेदारी निभाना हंसी–खेल नहीं है। साहूकार का कर्ज लद गया था उसके मूड़ पर।

मालिनी को मरियम की बातें आज भी याद हैं। उस समय वह चुप रह गई थी, सिर्फ इतना ही कह पाई– ''मैं क्या करती? उनको कौन समझाता? कौन लड़ाई करता?''

मरियम बहुत दुखी हुई। हास्पिटल से निकलते हुए मालिनी की पीठ हौले से ठोंककर कहा था– ''अनपढ़ मर्द के जाहिलपन की कोई हद नहीं। नाकिशकहीं का।..... आक्रोशित स्वर में..... औरत को जिंस समझ लिया है। मुंहतोड़ जवाब देना जरूरी था।.....पर.....संस्कार और मर्यादा की नकेल में बंधी औरत की यह बेचारगी.....ऐसी दुर्दशा.....। उफ।

यह परिस्थिति ही मालिनी की गरीबी की जड़ है। खुद की लाई हुई गरीबी, जिसे मिटा पाना अब उसके बूते का नहीं रह गया था। प्यारेलाल ने अपनी पूरी मर्दानगी बच्चे पैदा करने में ही दिखा दी और मालिनी चुपचाप सहती और झेलती रही।

प्यारेलाल का मिस्त्रीगिरी का धंधा चौपट हो गया था। वह दिन में भी पीने लगा था। उसे काम मिलना लगभग बंद हो गया था। घर–गृहस्थी चलाने के लिए बाप–दादा की दो–तीन बीघा जमीन ठाकुर रणवीर सिंह के हाथों रेहन पर रख दिया। पांच लाख लेकर कुछ रूपये मकान में लगाये और बाकी सट्टेबाजी में निकल गये। गरीबी आकर दरवाजे पर ऐसी पसर गई कि अब उठने का नाम नहीं ले रही है।

एक वह समय था, नत्थू की यारी से मालिनी को बहुत चिढ़ होने लगी थी। उसकी औरत का भी चक्कर चला प्यारेलाल के साथ। वह अपनी दिहाड़ी की कमाई का एक हिस्सा उसे ही सौंप देता था। मालिनी ने जब कभी एतराज किया तब घर में लड़ाई जैसे हालात पैदा हुए। नत्थू को पैसों से मतलब था। उसका भी किसी के साथ याराना था। यारी के घनचक्कर में प्यारेलाल का दीवाला निकलना तय हो गया था। नत्थू भी शराब में धुत्त होकर आये दिन सड़क और नाले के पास गिरा मिलता है। उसकी लुगाई कब की रफूचक्कर हो गई।

प्यारेलाल लकवाग्रस्त हो गया। उसकी अपाहिज जिंदगी को ढोते हुए मालिनी को उकताहट होने लगी थी। दवा के लिए पैसे कहां से ले आती वह। दो थान सोने का जेवर मायके से ले आई थी। साहूकार के पास पांच प्रतिशत ब्याज की दर से गिरवी रख दिया था। प्यारे की दवाई में वह पैसा भी फुर्र हो गया था।

नत्थू की संगति इतनी जल्दी प्यारेलाल की मौत का पैगाम लेकर आयेगी, मालिनी भी नहीं जान पाई। प्यारेलाल

ने दारू को ऐसे गले लगा लिया था कि संसार छोड़ना पड़ गया। इसी होली में मालिनी की जिंदगी रंगहीन हो गई थी।प्यारेलाल चल बसा था।

घूंघट का पट तो मालिनी बहुत पहले ही खोल चुकी थी। पति के संग–संग खेती–बाड़ी के काम में वह हाथ बंटाने लगी थी। बच्चों के पालन–पोषण से लेकर आधी–अधूरी घर–गृहस्थी का सारा काम वही संभालती थी। किंतु, आज परिस्थितियां विकट हो गई हैं। खर्च का ब्योंतकर मालिनी गृहस्थी चलाने के उपक्रम में धीरे–धीरे अपना गम भूलने लगी है। पति के न होने का दुःख मनाने का बहुत टाइम उसे नहीं मिला। गृहस्थी का बोझ ढोते हुए मालिनी आंसुओं में आखिर कब तक डूबी रह सकती थी। समाज में मालिनी का आना–जाना बढ़ गया था। उस कस्बाई शहर में रहने वाले आस–पास के चार–पांच घरों में मालिनी को घरेलू काम मिल गया था। चंद रुपये का सहारा पाकर मालिनी को तनिक राहत महसूस हुई।

.....जीवन की आपाधापी में उसका रूप–रंग बहुत दब गया था। नाक–नक्श का तीखापन और छरहरी काया बरकरार नहीं रख पायी वह। नौ बच्चों की मां होने का बहुत असर चेहरे पर नहीं आया था। फिर भी, उसकी देह पर मरने–मिटने के लिए गांव के शोहदे किस्म के दो–चार लोग गुड़ पर मक्खी की तरह उसके आसपास भिनभिनाने लगे थे। कुछ समय तक तो उन लोगों की हिम्मत नहीं हुई कि उससे खुलकर हंसी–मजाक कर सके।

अकेली जवान औरत, उसका भी तन–मन हिल–डुल गया। अपनी इच्छाएं दबाकर संतई की राह पर वह नहीं चल सकी थी। परिवार के भरण–पोषण की चिंता और जवानी का वेग, दोनों ही बातें उसे सता रही थीं। आगे–पीछे उसका दुखदर्द समझने वाला कोई न था।

समय का चक्र कुछ ऐसा चला कि इलाके के बदनाम और चलता पुर्जा ठेकेदार रुद्रशरण की निगाह मालिनी पर गड़ गई। रुद्रशरण अपने रण में माहिर था। उससे बचना मालिनी के लिए संभव नहीं हुआ। रुद्र की शरण में जाने के अलावा मालिनी को कोई रास्ता नहीं सूझा। इस घटना को लेकर कस्बे में लोगों के बीच बहुत खुसुर–फुसुर हुई। पर रुद्रशरण के भय के कारण लोगों की जुबान नहीं खुल पायी। धीरे–धीरे मालिनी का रंगरूप निखर आया। चेहरा खिल उठा। सुख के दिन उसके घर की देहरी पारकर घर के भीतर आंगन में आ गये थे। बच्चों के रूखे–सूखे चेहरे पर रौनक आ गई।

पर ऐसे छुट्टा सांड़–सा मरद का भरोसा कितने दिन टिक पाता। अभी साल भर हुआ। मुंह मारकर रुद्रशरण आगे चलता बना। मालिनी की जिंदगी फिर अनजानी राह पर भटक गई। बदनामी का टीका लगाये मालिनी अजीब पशोपेश में पड़ गई। कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। लोगों की निगाहों से गिरकर जीना पीड़ादायक है। यह पहली बार उसने महसूस किया था। घर से निकले बिना गुजर–बसर होने वाला नहीं था। खेत और खलिहान में मिली मजूरी के पैसे जोड़–जोड़कर गृहस्थी की गाड़ी थोड़ा खिसकने लगी थी। पर यह आर्थिक तंगी का स्थायी इलाज नहीं था।

मालिनी की तीनों लड़कियों की उम्र बचपना पारकर आगे बढ़ गई थी। सबसे बड़ा लड़का आठवीं में पढ़ने लगा था। और लड़के अभी छोटे थे। इन सबकी टूटी–फूटी स्कूली पढ़ाई नाम भर को चल रही थी। गांव के प्राथमिक विद्यालयों की हालत किसी से छिपी नहीं है। बच्चों के स्कूल आने–जाने का कोई नियम–कायदा नहीं रह गया है। सामान्य परिवारों के बच्चे ऐसे विद्यालयों में पढ़ने के लिए आया करते हैं। दोपहर के भोजन और चंद रुपये की सरकारी मदद की लालच में।

छोटे और बड़े बच्चों की आम बीमारियों के कारण मालिनी की आर्थिक स्थिति खस्ताहाल बनी हुई थी। मरता क्या न करता। इस लड़ाई को अकेले लड़ना अब उसके वश की बात नहीं रह गई थी। कोई नयी राह सूझ नहीं रही थी उसे।..... इसके बावजूद अपनी सयानी हो रही बेटियों को किसी परिवार में घरेलू कामकाज के लिए भेजना उसे स्वीकार नहीं है। इस विचार को आर्या ने भी तत्काल खारिज कर दिया था। वह चाहती है कि मालिनी के बच्चे स्कूली शिक्षा पूरी करे।.....परंतु मालिनी के दिल में एक नयी चिंता ने जगह बना ली थी। बच्चियों की इज्जत से कोई खिलवाड़ करें, उसे कतई बर्दाश्त नहीं होगा।

मालिनी जानती है कि उसके घर में गरीबी ने अपने पांव पसार लिया है। गरीबी में आटा गीला ही रहेगा। दाल–रोटी की जुगत बमुश्किल से हो पाती है। गृहस्थी का पूरा खर्चा उठाना उसके लिए स्वप्न है। उसके मन ने कहा– ''तो क्या किसी का संग पकड़ ले।..... भरोसेमंद कोई मिले तब न। चलते रास्ते तो किसी का हाथ पकड़ नहीं सकती है।'' पर क्या करे वह। वह कोई इस्तेमाल करने वाली वस्तु नहीं है। ''पहले इस्तेमाल करे फिर विश्वास करे'' विज्ञापन की यह पंक्ति अनायास मस्तिष्क में उभर आई थी। पर यहां तो सबसे बड़ा संकट विश्वास का है। कहां से लाऊं विश्वास,आज के समय में?''

मिनी के बाप को चाहकर भी मालिनी अब याद नहीं करना चाहती है। इसलिए नहीं कि वह उससे प्यार नहीं करता था, बल्कि उसके कर्मों की सजा वह भुगत रही है। बच्चों की पूरी फौज खड़ी कर दी उसने। सासू को ढेर सारी औलाद की कामना तो पूरी हो गई, पर उसकी जिंदगी के बारे में एक बार भी नहीं सोचा उसने।

नर्स की बातें मालिनी को याद आती है– ''पुरुष–चाहे पति ही क्यों न हो, आंख मूंदकर उस पर विश्वास करना, हर उल्टी–सीधी बातों पर सिर हिला देना, स्त्री के लिए आत्मघाती कदम है। वह केवल शोषण करता है, प्यार भी उसका स्वार्थवश है।.....''

मालिनी को प्यारेलाल की कही गई अनेक पुरानी बातें रह–रहकर तीर–सी चुभती रही हैं। वह सोचती है कि ''जब पति यह कहे कि जितना पैसा खर्च किया है तुम पर अब तक, उतना मजा मार लिया है।'' तब पति–पत्नी के संबंध का क्या अर्थ रह जाता है? मालिनी के विश्वास की डोर उसके ही गले का फंदा बन गई। गला घोंट दिया प्यारेलाल ने। उसकी कटु बातों की कितनी ही खरोंचे मालिनी के मन–मस्तिष्क में आज भी ताजा बनी हुई हैं। सासू मां मरीं और पति का संग छूट गया। यह सोचकर मालिनी उद्विग्न थी। उसके मरद ने कभी अपने परिवार का भला नहीं सोचा। "कमाई का कोई स्थाई ठिकाना नहीं, भूजी भांग तक घर में नहीं है, भला घर कैसे चलेगा?'' अपने बच्चों की ओर देखती हुई, बड़बड़ाती हुई मालिनी ने अपनी पीड़ा व्यक्त कर दी। फिर वह मन ही मन बुदबुदा उठी।

''इन पिल्ले–पिल्लियों का क्या होगा? इनका पालन–पोषण कैसे होगा?'' यह चिंता मालिनी की नींद हराम कर बैठी है। वह बताने लगी ''.....मर्दानगी दिखाने का पागलपन सवार था प्यारे को। .....भोगना तो हमें पड़ रहा है।'' मालिनी की बातें सुनकर देशराज ने सांत्वना दी और कहा कि ''हम हैं न तुम्हारे संग। काहे चिंता करती हो।''

.....मालिनी के मन में अपनी ममता को दांव पर लगाने का विचार भी आया। यह आइडिया भानु प्रताप ने उसे दिया था रुद्रशरण के बाद मालिनी के प्रति भानुप्रताप की हमदर्दी बढ़ गई थी। भानु छोटा–मोटा ठेकेदार है। उसके संग प्यारेलाल ने मिस्त्रीगिरी की थी। मालिनी उसे जानती है। अब वह अक्सर मालिनी के घर आने लगा है। उसी के कहे में मालिनी की जिंदगी धीरे–धीरे ढलने लगी थी।

अगली सुबह, मालिनी मास्टर ब्रजनंदन से मिलने के लिए घर से निकली। रास्ते में मंगलू मिल गया। वह छेड़खानी के मूड में था। मालिनी तेज गति से आगे बढ़ गई। उसके घर से तीन–चार फर्लांग पर ब्रजनंदन सहाय का मकान है। सहाय सर का दरवाजा खटखटाने में मालिनी को थोड़ा झिझक महसूस हुई। थोड़ी देर तक दरवाजे पर खड़ी रहकर उसने आहट लेने की कोशिश की। मोबाइल पर किसी के बात करने की आवाज सुनाई दे रही थी।..... पलभर ठहरकर.....मालिनी ने कालबेल दबाया। मिनट भर बाद ब्रजनंदन बाहर आये। रामजुहार हुई। उन्होंने बरामदे में तखत पर मालिनी को बिठाया और खुद कुर्सी लेकर बैठ गए। बच्चों का हाल–चाल पूछा। बहुत देर तक मालिनी अपने मन को रोक नहीं पायी। ब्रज के सम्मुख उसने अपना हृदय खोल दिया–

''मास्साब! देखो, सब हाल आप जानत हो। इस महंगाई में कैसे अकेले घर–गृहस्थी चलेगी। मेहनत–मजूरी से कितने दिन गाड़ी खिंचेगी। बाल–बच्चे सयाने हो रहे हैं। खानपान तो ठीक है, पर कपड़ा–लत्ता, दवाई, पढ़ाई सब तो है मूड़ पर..... क्या करें हम? बेटियां इज्जत का पहाड़ हैं, किस घाट लगेंगी। .....बताओ मास्साब। सही राह दिखाओ गुरुजी।''

अपनी विपत्ति कथा कहते हुए मालिनी की आंखें भर आईं थीं। ब्रजनंदन भावुक होकर बोले– ''घबराओ नहीं, धीरज रखो, कोई रास्ता निकालते हैं। इतनी जल्दी हार मान लोगी, कैसे चलेगा? बच्चों को संभालना है। मुश्किलों से क्या घबराना। लड़ना तो पड़ेगा तुम्हें। चुनौतियों की ओर पीठ फेर लेने से बात नहीं बनेगी।'' इन बातों को सुनकर मालिनी की हिम्मत बढ़ी।..... कॉलेज जाने का समय हो रहा था। पहला पीरियड उन्हीं का था। मालिनी से शाम को मिलने की बात कहकर ब्रजनंदन ने स्कूटर घर से निकाला, मालिनी को विदा करते हुए स्कूटर स्टार्ट किया और कॉलेज चले गए।

क्लास में छात्रों को पढ़ाने में आज ब्रजनंदन सहाय का मन नहीं लग रहा था। वे मालिनी के हालात पर बहुत उद्विग्न थे। आज हिंदी का नया पाठ न पढ़ाकर उन्होंने छात्रों को कल पढ़ाये गये पाठ से कुछ प्रश्नों के उत्तर लिखने को दे दिया और स्वयं क्लासरूम में बैठकर मालिनी की समस्या का हल ढूंढने की कोशिश करने लगे, दिमाग पर बहुत जोर लगाया। अचानक कुछ सूझ नहीं रहा था। मालिनी की समस्या के हल का कोई सिरा पकड़ में नहीं आ रहा था।..... उन्हें इस बात का दुःख था कि मालिनी की कोई मदद वे तत्काल नहीं कर पा रहे हैं।उनका हृदय करुणा से आप्लावित हो गया था। मालिनी की विवशता को याद करते हुए वे अन्यमनस्क थे।....

आखिर में दो बरस पहले कही हुई सीमांत की एक बात बिजली की तरह उनके मन में कौंध गई। अचानक उन्हें एक विचार सूझा। यह विचार कितना उचित है, तत्काल वे कैसे मान लें? उन्होंने सोचा कि चलो इस मुद्दे पर अपने साथी सीमांत से ही बात करते हैं। क्लास से निकलकर वे सीधे स्टाफ रुम में पहुंचे। सीमांत अभी अपनी अंग्रेजी की क्लास से लौटे नहीं थे। दो मिनट बाद सीमांत स्टाफरुम में दाखिल हुए। ब्रजनंदन के चेहरे की चमक और बढ़ गई। उन्हें विश्वास हुआ कि अब दोनों मित्र बातचीत कर मालिनी की समस्या का कोई रास्ता निकाल ही लेंगे।

सीमांत ने सारी बातें बहुत गंभीरता से सुनी और थोड़ा ठहरकर विचार करते हुए कहा, ''समस्या जटिल है। पढ़ी–लिखी होती तो किसी आफिस में छोटा–मोटा काम दिलाया जा सकता था। खैर... कोई रास्ता देखा जाएगा। (दिमाग पर जोर देते हुए) परेशान होने की जरूरत नहीं है। उनके दिमाग में एक आइडिया आया। उत्सुकतावश ब्रजनंदन की आंखें फैल गईं। चेहरे पर चिंता की लकीरें सिमटने लगीं और वे बोल पड़े, अरे भाई ! जल्दी बताओ।

सीमांत ने कहा कि ''मेरे दो छोटे बेटे हैं, स्कूल पढ़ने जाते हैं। मेरी धर्मपत्नी कालेज में पढ़ाती हैं। घर में बूढ़ी मां अकेली रहती है। बच्चे स्कूल से घर लौटते हैं तो उनके कपड़े बदलने, खाना परोसने, बूढ़ी मां को दवा–पानी देने के लिए यदि एक समझदार लड़की मिल जाय तो हम उसे आश्रय दे सकते हैं। बेटी जैसी रहेगी वह। पढ़े–लिखेगी। ..... .जो भी वाजिब आर्थिक सहायता होगी..... लड़की की मां को दी जायेगी।''

ब्रजनंदन को सीमांत की बात जंच गई। उनकी आंखें खुशी से छलक आईं। जिगर में प्रसन्नता अंट नहीं रही थी। उन्होंने सीमांत के इस कदम की सराहना की।..... लेकिन एक पल बाद उनके भाव बदल गये और वे सोच में पड़ गए। दिमाग में प्रश्नों की झड़ी लग गई।'' कोई अपनी बेटी अपरिचित परिवार में क्यों देगा? वह भी आज के समय में। आये दिन समाचार पत्रों में कितनी ही घटनाएं छपती रहती हैं। ''यह विचार दिमाग में आते ही उनकी प्रसन्नता गुम हो गई।..... पर जिंदगी में रिस्क लेने की अपनी आदत के कारण उन्होंने अपने मन को समझा लिया था। सीमांत बोले–क्या मेरा प्रस्ताव नहीं जंचा? साफ बताओ। ब्रजनंदन ने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है। सिर्फ..... सिर्फ यह कि लड़की का मामला है? ''यह सुनकर सीमांत गंभीर हो गये और कहा कि यह चिंता वाजिब है किन्तु हमारे परिवार में ऐसी स्थिति की कल्पना करना व्यर्थ है। खानदानी हैं हम। आप निफिकिर रहिए।'' यह सुनकर ब्रजनंदन के दिल को राहत मिली।

मालिनी के परिवार की दयनीय हालत के बारे में जानकर सीमांत के दिल में दया भाव उमड़ आया था। करुणा का सागर हिलोरे लेने लगा था। उसने न आगा देखा और न पाछा। न ही लोगों की फितरत के बारे में ही सोचा। झट से 'हां' कह दिया था। सीमांत भी कई बार अपने निर्णय पर विचलित हुए। घर–परिवार में सलाह–मशविरा करने की बात सोचा। परंतु, ब्रजनंदन को वे पहले ही आश्वस्त कर चुके थे।

सीमांत का भरोसा पाकर ही ब्रजनंदन ने उस गरीब परिवार की एक बच्ची को सहारा देने की बात मान ली थी।

दोनों मित्र मालिनी के घर पहुंचे। खुलकर बातचीत हुई। विश्वास की एक लक्ष्मण रेखा खिंच गई थी। गरीबी से बेहाल मिनी की मां ने सीमांत के सामने कोई शर्त–वर्त नहीं रखी। वह चाहती थी कि ''दोनों बड़ी बेटियों का जीवन संवर जाये। उन्हें अच्छे संस्कार मिलें। वे पढ़–लिख जायें।..... सबसे बड़ी चुनौती तो बच्चों की पढ़ाई–लिखाई की थी। बच्चों का भविष्य बन जायेगा। यही चिंता उसे परेशान कर रही थी।''

मालिनी की पारिवारिक स्थिति और आर्थिक संकट से सीमांत खूब परिचित था। उन्हें अपने साढू भाई की बात भी याद आई कि ''उनके छोटे बच्चे को संभालने के लिए कोई समझदार लड़का या लड़की चाहिए था।'' सीमांत ने अपने साढू भाई से मोबाईल पर बात की। मालिनी की बड़ी लड़की को वे अपने घर रखने के लिए तैयार हो गए।

विश्वास की एक झीनी–सी डोर से मालिनी और सीमांत का परिवार बंध गया था। लेकिन, अभी उनमें न तो सगेपन का कोई रंग चढ़ा था और न ही पारिवारिक रिश्ता कायम हुआ था। पहले से उनकी परस्पर कोई जान–पहचान न थी। शायद इसीलिए सीमांत से हुई दो–चार घंटे की मेल–मुलाकात की अपेक्षा ब्रजनंदन सहाय सर का रिकमेंडेशन ही ज्यादा कारगर सिद्ध हुआ। ब्रजनंदन के प्रबल आग्रह और बार–बार भरोसा दिलाये जाने के भरोसे ही मालिनी के मन में विश्वास का अंकुरण हो पाया था। मालिनी अब बीते हुए समय को याद नहीं करना चाहती है। वह संकल्प कर चुकी है कि बड़ी बेटी को भी सीमांत के रिश्तेदार के घर पहुंचाना है। वह जान गई है कि बेटियों की इज्जत आबरू उसके घर में रहते हुए नहीं बच पायेगी। ..... ठेकेदार और उसके तमाम गुर्गों की निगाहें पढ़ लिया था उसने। कितनी ही घटनाएं उसके आस–पास घट रही थीं। मालिनी बेहद सतर्क हो गई थी।

मिनी की मां ने एक बेटी को सीमांत के पास रखने का मन बना लिया था। दूसरी को भी उनके बताए ठिकाने पर पहुंचाने की ताक में थी वह। सही समय और व्यक्ति के मिलने का इंतजार अब पूरा हुआ। मालिनी घर से अयोध्या के लिए निकल रही थी, इसकी भनक न जाने कैसे ललाइन चाची को मिल गई। वह फाट पड़ीं तत्काल। पूछने लगीं कि ''इतनी सुबह–सुबह कहां की तैयारी है?'' मायके जाने का बहाना कहकर मालिनी मिनी को साथ लेकर निकल गई।

इधर घर में बच्ची के आने की खबर से सीमांत का परिवार आह्लादित था।..... अयोध्या स्थित अपने घर के लिए निकले सीमांत के साथ ब्रजनंदन सहाय, मालिनी और मिनी आये। सीमांत ने अपने परिवार से मालिनी की मुलाकात कराई। घर में नये मेहमान का सीमांत की पत्नी इरा ने स्वागत किया। सभी ने चाय–नाश्ता किया। इरा ने मिनी को अपने बच्चों से मिलवाया। .....मिनी को सीमांत के दोनों बेटों से मिलकर कोई खुशी नहीं हुई। मिनी बेहद उदास और सहमी हुई थी। वह पहली बार मिली थी सीमांत के परिवार से। बहुत कुछ खोकर आई है मिनी यहां..... वह बहुत दुःखी थी। उसका घर–द्वार छूटा, बहनें और सब भाई छूटे, खेत और बाग छूटा। सखी–सहेलियां छूटीं, खेल छूटा, स्कूल पहले ही छूट गया था। कई माह पहले बाप का साया भी छूट गया था। गांव का माहौल छूट गया। .....और भी बहुत कुछ छूट गया। इस छूटने का दर्द मिनी ही समझ सकती थी, मां नहीं।

अयोध्या के लिए आते समय भाइयों और बहनों की समझ में यह नहीं आया कि मां केवल मिनी को ही शहर घुमाने क्यों ले जा रही है? उन सबने भी साथ चलने की जिद की थी। पर मां ने डांट–डपट कर बच्चों को शांत कर दिया था।

अपना घर–परिवार छूटने का सारा दृश्य मिनी की आंखों में तैर रहा था। न जाने कितनी बातें सोचकर मिनी बेहाल हो रही थी। उसकी अक्ल पर ताला जड़ गया था। वह जानना चाहती थी कि गरीबी के कारण यह सजा आखिर उसी को क्यों मिली? बड़ी बहन को क्यों नहीं मेरी जगह ले आई मां। .....मैं तो अभी उतनी सयानी भी नहीं हुई?....मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों?'' मां ने मुझसे कितना बड़ा झूठ

बोला कि अयोध्या मंदिर घूमने चल रहे हैं। अयोध्या का नाम सुनकर मैं आह्लादित हो गई थी।बहुत खुश थी। पहली बार घर से इतनी दूर की यात्रा थी मेरी। मां ने मुझे धोखा दिया। ....ऐसी ही कितनी बातें मिनी के कच्चे मन को जख्मी बना रही थीं। वह रुआंसी हो गई थी। उसके मन की पीड़ा की थाह लगाने वाला कोई न था।

जब मिनी को सीमांत के परिवार में छोड़कर मालिनी अपने घर लौटने लगी तब मां से लिपटकर वह खूब फफक–फफक कर रोई थी। मालिनी ने बहुत समझाया– ''बेटी ! रोती क्यों हो? मैं तुझसे मिलने आती रहूंगी। जब भी तुम्हारा मन मिलने को कहेगा, फोन करना या घर आ जाना। मैं भी आती रहूंगी तुमसे मिलने। चुप हो जा बेटी ! आज से यह भी तुम्हारा घर हो गया है। देखो ! दो छोटे भइया हैं, इन्हीं के साथ खेलना, पढ़ना–लिखना। रो मत बेटी ! ये चाची–चाचा और ये देखो! दादी जी।'' मिनी को बार–बार पुचकारते हुए– ''तुम मुहल्ले में इधर–उधर खेलती–फिरती हो। अच्छा नहीं लगता है। रानी बेटी ! तुम बड़ी हो रही हो और समझदार भी।''

मां की सांत्वनाभरी बातें मिनी को तत्काल समझ में नहीं आयीं। अपने परिवार का साथ छूटने का दर्द मिनी को झकझोर रहा था। एक अपरिचित परिवार को अपना मान लेना उसके लिए इतना सहज नहीं था। समझदारी की उम्र के करीब भी तो मिनी अभी नहीं पहुंची थी। आठ दस साल, बालपने की उम्र होती है। मिनी अभी आठ साल की ही है।

मिनी ने मां को दोनों हाथों से जकड़ लिया था। वह चीख रही थी– ''मत छोड़ मां मुझे। मैं नहीं रहूंगी यहां। यह मेरा घर नहीं है।'' मिनी के आंसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। सीमांत और उनका परिवार धर्मसंकट में पड़ गया था। एक बार तो सीमांत के मन में आया कि– ''कह दे मालिनी से, ले जा मिनी को अपने साथ।'' परंतु मालिनी के बच्चों की दुर्दशा याद कर सीमांत चुप रह गया था।

सचमुच उस मां के मन की उथल–पुथल को समझ पाना हर किसी के लिए संभव नहीं था। यह कठिन निर्णय उस मां के जीवन की हार थी या जीत, कह पाना बड़ा मुश्किल है। मालिनी अपने निर्णय पर अटल थी।.... बेटी को सहारा मिलना तय हो गया था। सीमांत और उसके परिवार के प्रति उसमें कृतज्ञता का भाव भर गया था। वह सोचने लगी थी कि– ''आज के जमाने में कौन किसी की जिम्मेदारी लेता है? और वह भी एक लड़की की जिम्मेदारी। सीमांत के परिवार का अपनापन उसे बहुत अच्छा लगा था।'' मालिनी को अनायास गांव के मास्टर मुरलीधर से सुनी महादेवी वर्मा की चंद काव्यपंक्तियां स्मरण आ रही थीं–

चिर सजग आंखें उनींदी
आज कैसा व्यस्त बाना
जाग ! तुझको दूर जाना.....

मालिनी नींद से जाग उठी थी। किसी के कहे में अब वह नहीं आयेगी। सीमांत के परिवार में बच्ची के उजले भविष्य की कल्पना कर वह भाव–विभोर हो गई थी।

एक अपरिचित परिवार में बेटी को पलने के लिए छोड़ देना मालिनी का कठकरेजपन कहें या कि अपूर्व साहस। या फिर हद दर्जे का स्वार्थीपन।

सच तो यह है कि मालिनी की आत्मा के द्वार पर वात्सल्य की कुंडी बराबर खटकती रही। मन बार–बार धिक्कार रहा था कि बेटी को दूसरे के हवाले कर तूने अपने मातृत्व से दगा किया है। अपने किसी बेटे को घर निकाला क्यों नहीं दिया।यह कहकर कि ''तू जा ! घर से बाहर जा !! चार पैसे कमा कर ले आ।'' ऐसे ही अनेक विचारों से घिरा मालिनी का मन पछाड़ खाता रहा।

वास्तव में आज मालिनी एक भारी चिंता से स्वयं की मुक्ति पा रही थी। उसने अपने मन को काबू में करने की भरपूर कोशिश की, किंतु ममता के आवेग को बहुत देर तक रोक पाना उसके लिए संभव नहीं हुआ। आंखें तेज धार बरसने लगी थीं। अपने आंचल से मुंह ढांपकर वह सीमांत के घर से बाहर निकल आई थी। पल भर में वह बेटी मिनी की नजरों से एकदम ओझल हो गई। मालिनी स्मृति में उस सुने हुए गीत की पंक्तियां उभरने लगी थीं– .....जाग तुझको दूर जाना..... । ◆

पता : अध्यक्ष, हिंदी एवं संस्कृत विभाग, डाक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म .प्र)

संगम घाट पर

❑ पूजा गुप्ता

प्रयागराज की तंग और पथरीली गलियों में, जहाँ हर कोने से गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के पवित्र संगम की गूँज सुनाई देती थी, एक पुराना घर खड़ा था। यह घर संगम घाट के पास, एक प्राचीन शिव मंदिर के ठीक सामने था, जिसके गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग पर सुबह–शाम जल चढ़ाया जाता था। मंदिर की घंटियों की मधुर ध्वनि हवा में तैरती थी, और पास ही एक विशाल नीम का पेड़ खड़ा था, जिसकी पत्तियाँ हल्की हवा में सरसराती थीं। नीम की छाया में बच्चे खेलते, और बुजुर्ग सुस्ताते। पेड़ की जड़ों के पास मिट्टी में छोटे–छोटे गड्ढे थे, जहाँ बारिश का पानी जमा हो जाता था। घर की दीवारें समय की मार से खुरदरी हो चुकी थीं। दीवारों पर सीलन की काली परतें उभर आई थीं, और कुछ स्थानों पर चूने का प्लास्टर उखड़कर गिर चुका था। छत के कोनों में मकड़ियों के जाले लटक रहे थे, जो हवा में हल्के से हिलते थे। फिर भी, इस घर की नींव में बंधा था एक परिवार का अटूट विश्वास और प्यार, जो पीढ़ियों से चला आ रहा था।

इस घर की आत्मा थीं दादी माँ, जिनका असली नाम सुखमिला था, पर गाँव के लोग उन्हें प्यार से "सुखी" कहते थे। दादी माँ की उम्र अब नब्बे के पार थी। उनके चेहरे की झुर्रियाँ समय की किताब की तरह थीं, जिनमें अनगिनत कहानियाँ, दुख, सुख और अनुभव छिपे थे। उनके बाल, जो कभी घने और काले थे, अब पतले और चाँदी जैसे सफेद हो चुके थे। वह हमेशा एक सादी, पर साफ–सुथरी साड़ी पहनती थीं, जिसका रंग समय के साथ फीका पड़ चुका था। उनकी साड़ी का पल्लू हमेशा कंधे पर सजा रहता था, और उसमें हल्की–सी चंदन की गंध बसी रहती थी। उनके कमरे में एक पुरानी लकड़ी की खटिया थी, जिसके पायों पर नक्काशी के निशान अब धुंधले पड़ चुके थे। खटिया के नीचे एक पुराना चटाई का टुकड़ा बिछा था, जो धूल और समय के साथ मैला हो गया था। खटिया के पास एक छोटा–सा लकड़ी का स्टूल था, और उस पर रखा था एक जंग लगा संदूक।

यह संदूक कोई साधारण बक्सा नहीं था। इसका लोहा जंग से लाल हो चुका था, और

उस पर लटकता ताला धूल की परतों से ढका था, जैसे कोई प्राचीन रहस्य अपने भीतर छिपाए हो। संदूक की सतह पर छोटे–छोटे खरोंच और दाग थे, जो समय के साथ और गहरे हो गए थे। इसके चारों ओर एक रहस्यमयी आभा थी, जो घर के हर सदस्य को कौतुहल में डालती थी। संदूक के एक कोने पर एक छोटा–सा निशान था, जैसे किसी ने चाकू से कुछ खरोंचा हो। दादी माँ के लिए यह संदूक सिर्फ लोहे का बक्सा नहीं था, यह उनके दिल का एक हिस्सा था, जिसमें उन्होंने अपनी जिंदगी का सबसे कीमती रहस्य सहेज रखा था।

संध्या का समय था। संगम घाट पर भक्तों की भीड़ थी। गंगा के किनारे मंदिरों की घंटियाँ बज रही थीं, और हवा में अगरबत्तियों, चंदन, और गुलाब के फूलों की मिश्रित सुगंध तैर रही थी। घाट पर दीप जल रहे थे, जिनकी टिमटिमाती रोशनी गंगा की लहरों पर नाच रही थी। कुछ भक्त गंगा में डुबकी लगा रहे थे, तो कुछ पुजारी मंत्रोच्चार में व्यस्त थे। घाट के किनारे बैठे पंडों की आवाजें हवा में गूँज रही थीं, जो श्रद्धालुओं को तीर्थ की महिमा और गंगा के महत्व के बारे में बता रहे थे। घाट के पास एक छोटा–सा बाजार था, जहाँ फूलों की मालाएँ, अगरबत्तियाँ, और पूजा का सामान बिक रहा था। कुछ बच्चे घाट की सीढ़ियों पर कागज की नावें तैरा रहे थे, और उनकी हँसी हवा में गूँज रही थी।

घर के आंगन में नीम का पेड़ हल्की हवा में झूम रहा था। उसकी पत्तियों से छनकर आती धूप आंगन की मिट्टी पर सुनहरी रेखाएँ बुन रही थी। आंगन में एक पुराना तुलसी का चौतरा था, जिसके चारों ओर छोटे–छोटे गमलों में गेंदे और चमेली के फूल सजे थे। तुलसी के पौधे के पास एक छोटा–सा दीपक जल रहा था, जिसकी लौ हवा में हल्के से काँप रही थी। आंगन के एक कोने में माँजी, यानी दादी माँ की इकलौती बहू, रसोई से निकलकर कपड़े सुखाने में व्यस्त थीं। उनकी साड़ी का पल्लू हवा में लहरा रहा था। माँजी की साड़ी सादी थी, पर उसका गहरा नीला रंग उनकी मेहनत और सादगी को दर्शाता था। उनके चेहरे पर थकान थी, पर उनकी आँखों में एक गहरी शांति थी। वह सुबह से रसोई में व्यस्त थीं, और अब कपड़े सुखाते हुए अपने बेटों और बहुओं की छोटी–मोटी बातें सुन रही थीं।

रसोई का दरवाजा थोड़ा खुला था, और उसमें से चूल्हे की लकड़ियों की जलने की गंध आ रही थी। रसोई में एक पुराना चूल्हा था, जिस पर माँजी अभी भी रोटियाँ बनाती थीं। चूल्हे के पास एक पुरानी लकड़ी की चौकी थी, जिस पर आटे की लोई और बेलन रखा था। पास ही एक टिन की डिब्बी में मसाले भरे थे, और उनकी गंध हवा में मिल रही थी। रसोई की दीवार पर एक पुराना कैलेंडर टँगा था, जिसके पन्ने हवा में हल्के से हिल रहे थे। आंगन में एक कोने में पानी का मटका रखा था, जिसके ऊपर पीतल का गिलास उल्टा रखा था। मटके के पास मिट्टी में कुछ छोटे–छोटे निशान थे, जहाँ मुर्गियाँ चोंच मारकर दाना चुगती थीं।

मानसी, परिवार की सबसे छोटी बहू, दादी माँ के कमरे में थी। वह उनकी खटिया के पास बैठी थी, उनकी गोद में सिर रखकर उनके पैर दबा रही थी। मानसी की साड़ी हल्के हरे रंग की थी, और उसके पल्लू पर छोटी–छोटी बूँदियों की कढ़ाई थी। उसकी उंगलियाँ धीरे–धीरे दादी माँ की टाँगों पर चल रही थीं, और वह उनके चेहरे को देख रही थी। दादी माँ की आँखों में एक अजीब–सी चमक थी, जैसे कोई पुराना बोझ उनके दिल पर लदा हो। उनकी हड्डियाँ अब कमजोर थीं, और साँसें भारी। फिर भी, उनकी आवाज में एक गहरा विश्वास था। कमरे में एक पुरानी खिड़की थी, जिसके लकड़ी के फ्रेम पर रंग उतर चुका था। खिड़की के बाहर से नीम की पत्तियों की छाया कमरे में पड़ रही थी, और हल्की हवा के साथ पत्तियों की सरसराहट सुनाई दे रही थी।

"बस कर मानसी... कब तक पैर दबाती रहेगी... बुढ़ापे का दर्द है... मेरे साथ ही जाएगा...!" दादी माँ ने गहरी साँस लेते हुए कहा। उनकी आवाज में थकान थी, पर साथ ही एक मासूमियत थी जो मानसी को हमेशा छू लेती थी। दादी माँ के हाथों में एक पुरानी माला थी, जिसके दाने समय के साथ चिकने हो गए थे। वह धीरे–धीरे माला फेर रही थीं, और उनकी उंगलियों की हरकत में एक लय थी।

मानसी ने तुरंत उठकर उनकी पीठ के पीछे एक पुराना तकिया लगाया। तकिए का कपड़ा फीका पड़ चुका था, पर उसमें दादी माँ की गंध बसी थी–चंदन और थोड़ी–सी कपूर की मिली–जुली सुगंध। तकिए के एक कोने

में छोटा–सा छेद था, जहाँ से रूई बाहर झाँक रही थी। मानसी जानती थी कि दादी माँ को लेटे–लेटे रामायण या भागवत गीता सुनना पसंद नहीं था। लाख दर्द के बावजूद वह हमेशा उठकर बैठ जाती थीं। मानसी ने पास की मेज पर रखी भागवत गीता की किताब उठाने की कोशिश की। किताब का कवर पुराना था, और उसके पन्ने पीले पड़ चुके थे। किताब के किनारों पर धूल जमी थी, और कुछ पन्नों पर छोटे–छोटे निशान थे, जैसे किसी ने पेंसिल से रेखाएँ खींची हों। मेज पर एक छोटा–सा तेल का दीपक भी था, जिसकी बत्ती काली पड़ चुकी थी।

पर दादी माँ ने किताब को हाथ से रोक लिया। "आज नहीं सुनना है मुझे कुछ... बैठ मेरे पास... आज तो तुझसे कुछ कहना है बेटी," उनकी आवाज में एक गंभीरता थी, जो मानसी को चौंका गई।

"हाँ... हाँ... बोलिए न दादी माँ, क्या बात है?" मानसी ने पलंग के बगल में एक पुरानी लकड़ी की कुर्सी खींचकर बैठते हुए उत्सुकता से पूछा। कुर्सी की चरमराहट कमरे के सन्नाटे में गूँज गई। कुर्सी के एक पाए में दरार थी, और वह हर बार बैठने पर हल्का–सा हिल जाता था। कमरे की दीवार पर एक पुरानी तस्वीर टँगी थी, जिसमें दादी माँ अपने पति के साथ खड़ी थीं। तस्वीर का रंग फीका पड़ चुका था, पर उसमें दादी माँ की जवानी की झलक दिखती थी। तस्वीर के फ्रेम पर धूल जमी थी, और एक कोने में छोटा–सा दरार था।

दादी माँ ने दीर्घ साँस ली। उनकी मटमैली आँखें मूँद गईं, जैसे वह किसी पुरानी स्मृति में खो रही हों। "ये संदूक देख रही हो न...!" उन्होंने स्टूल पर रखे जंग लगे संदूक की ओर इशारा किया। संदूक का रंग उड़ा हुआ था, और उस पर लटकता ताला समय की धूल से ढका था। "मेरी मृत्यु के बाद, जिस रोज मेरा अस्थि विसर्जन हो, तब उस अस्थि–कलश के साथ इस संदूक को भी संगम घाट में विसर्जित करवा देना बिटिया... बड़े दिनों से यह बात दिल में दबाकर रखी थी, पर अब दिल भी कमजोर पड़ता जा रहा है... कौन जाने कितनी साँसें शेष हैं... पता नहीं कब गहरी नींद लग जाए... ऐसा न हो कि दिल की बात बताने का मौका ही न मिल पाए... यही सोचकर आज तुमसे कह दिया... देखो तो, मन कितना हल्का हो गया... ।"

दादी माँ के पोपले मुँह से हल्की–सी हँसी निकली। उनकी हँसी में एक मासूमियत थी, जो कमरे के सन्नाटे को तोड़ देती थी। उन्होंने मानसी की हथेली खींचकर अपने सीने पर रख ली। मानसी की उंगलियाँ दादी माँ की हथेली की गर्मी को महसूस कर रही थीं। मानसी मुस्कुरा दी, पर दादी माँ की इस अप्रत्याशित बात से वह विस्मित भी थी। "ऐसा क्यों कहती हो दादी माँ...? अभी तो आपको और भी लंबी जिंदगी जीनी है," कहते हुए उसने संदूक पर नजर डाली। उस पर जंग लगा बड़ा–सा ताला लटक रहा था, जैसे कोई पुराना रहस्य अपने भीतर छिपाए हो।

"इस पर तो ताला लटक रहा है दादी माँ... चाबी कहाँ है इसकी?" मानसी ने उत्सुकता से पूछा। उसकी नजरें संदूक पर टिकी थीं, और उसके मन में सवाल उमड़ रहे थे।

"चाबी का क्या करना है... ताले को यूँ ही लटके रहने दो... किसी के काम का कुछ नहीं मिलेगा इसमें... वैसे भी चाबी गुम हो गई है... मैंने ही गुमा दी...!" दादी माँ ने फिर से मुस्कुराते हुए कहा। उनकी मुस्कान में एक रहस्य था, जो मानसी को और उलझा रहा था।

"क्या? गुमा दी मतलब?" मानसी का अचरज और बढ़ गया। उसने अपनी भौंहें सिकोड़ लीं, और उसकी आँखों में जिज्ञासा की चमक थी।

दादी माँ कुछ संजीदा हो गईं। उनकी आँखों में एक पुरानी याद तैर रही थी। "मतलब मैंने जानबूझकर उस चाबी को गहरे तालाब में फेंक दिया, ताकि ये ताला कभी न खुले... ! मानसी, वो जो तुम अपने कमरे में बजाती हो न, नए जमाने का रेडियो... वो क्या कहते हैं उसको... जिसमें वो काली–काली जिसे तुम चिप कहती हो, डालकर चलाती हो... एक ही गीत अच्छा लगने पर बार–बार बटन दबाकर दोबारा वही गीत सुनती हो...!"

"मोबाइल... दादी माँ, मोबाइल है वो...!" मानसी को हँसी आ गई। दादी माँ की मासूमियत उसे हमेशा छू लेती थी। उसने अपने बालों को कंधे पर लहराते हुए ठीक किया और दादी माँ की ओर देखा।

"हाँ–हाँ... वही मोबाइल... इंसान की जिंदगी वैसी नहीं होती... जो पल हम एक बार जी लेते हैं, उन्हें किसी बटन से दोबारा नहीं जिया जा सकता... जो दिन बीत गए, सो बीत

गए... बस इसलिए गुमा दी मैंने चाबी...!" दादी माँ की आवाज में एक गहरी उदासी थी, जैसे वह उन बीते पलों को फिर से जीना चाहती हों, पर जानती हों कि यह असंभव है।

मानसी की समझ से उनकी ये दार्शनिक बातें परे थीं। वह बार–बार घड़ी पर नजर डाल रही थी। उसकी कलाई पर बंधी सादी–सी घड़ी की टिक–टिक कमरे के सन्नाटे में सुनाई दे रही थी। विजय, उसका पति, ऑफिस से लौटने वाला था। विजय रोज लौटते वक्त उसके लिए मोगरे की वेणी लाता था। मोगरे की वो गंध मानसी को बहुत पसंद थी, और वह उसे अपने बालों में लगाकर विजय का इंतजार करती थी। यदि उसने बाल न संवारे हों, तो विजय का मूड खराब हो जाता था। दादी माँ की अनुभवी आँखें सब देख–समझ लेती थीं।

तभी दादी माँ बोलीं, "अब उठो... बैठी क्यों हो... छः बजने को है... विजय आने ही वाला होगा... बाल–वाल संवार लो... अब हमारे दिन तो हैं नहीं वेणी लगाने के...!" उनकी आवाज में शरारत थी, और उनकी आँखें चमक रही थीं।

"ओह दादी माँ, आप भी...!" मानसी शर्म से लाल हो गई। उसने अपनी साड़ी का पल्लू ठीक किया और हँसते हुए उठ खड़ी हुई। दादी माँ ने फिर अपना पोपला मुँह खोल दिया और हो–हो कर हँसने लगीं। उनकी हँसी में एक ऐसी मासूमियत थी, जो कमरे के सन्नाटे को तोड़ देती थी।

कुछ दिन बाद, एक रात माँजी दादी माँ को दवा देने उनके कमरे में गईं। कमरे में सन्नाटा था। दीपक की लौ हल्के से टिमटिमा रही थी, और उसकी रोशनी दादी माँ के पलंग पर पड़ रही थी। दादी माँ शांत लेटी थीं, जैसे गहरी नींद में हों। उनके चेहरे पर एक अजीब–सी शांति थी। माँजी ने पास जाकर उन्हें छुआ, पर उनकी देह ठंडी थी। माँजी का दिल धक् से रह गया। उन्होंने जल्दी से बाबूजी को बुलाया, और फिर डॉक्टर को। डॉक्टर ने बताया कि लगभग आधे घंटे पहले ही दादी माँ की हृदय गति रुकने से मृत्यु हो चुकी थी।

घर में कोहराम मच गया। दादी माँ ने लंबी उम्र जी थी–पचहत्तर वर्ष। फिर भी, उनकी मृत्यु ने सभी को झकझोर दिया। मानसी को बार–बार उनकी आखिरी बातें याद आ रही थीं, "पता नहीं कब गहरी नींद लग जाए... कहीं दिल की बात दिल में न रह जाए..." वह कोने में दीवार के सहारे बैठी थी, आँखें मूँदे, जैसे दादी माँ की आवाज अभी भी उसके कानों में गूँज रही हो।

"बहू... ओ बहू...!" माँजी ने लगभग झकझोरते हुए मानसी को हिलाया। "चलो उठो, चलकर अंदर के कमरे में बैठ जाओ... तुम्हारे बाबूजी और बाकी लोग लौट आए हैं।" माँजी की आवाज से मानसी की चेतना जागी। उसने देखा कि घर के सारे पुरुष–बाबूजी, विजय, और तीनों जेठजी संजय, राकेश, राजन–दादी माँ की अंत्येष्टि कर लौट आए थे। आंगन में अब भी पास–पड़ोसियों और नाते–रिश्तेदारों की भीड़ थी।

मानसी भीतरी कमरे में आकर अन्य स्त्रियों के पास बैठ गई। दादी माँ ने उम्र की लंबी पारी जी थी, इसलिए रोना–पीटना कम था। विधि–विधान से सारे कार्य शांति से निबटाए जा रहे थे। सहानुभूति प्रकट करने आई महिलाएँ दादी माँ के गुणों की चर्चा कर रही थीं। कोई उनकी सादगी की बात करता, तो कोई उनके परिवार के प्रति समर्पण की। कुछेक की जिज्ञासा थी कि दादी माँ ने जाते–जाते किसे क्या दे दिया।

माँजी ने बड़ी समझदारी से बात को मोड़ा, "अम्मा के आशीर्वाद से ही अब तक परिवार में हँसी–खुशी का माहौल बना रहा है... मैं तो उनकी इकलौती बहू रही हूँ, पर अम्मा ने मेरे साथ–साथ मेरी चारों बहुओं पर भी इतना स्नेह लुटाया है कि किसी को कभी मायके की कमी नहीं खलने दी। उनके आशीर्वाद से यहाँ प्रेम–भाव परिवार में कायम रहे... बस... और हमें क्या चाहिए?"

माँजी की बातों में एक गहरा दर्द भी था। वह जानती थीं कि दादी माँ ने उन्हें और उनकी बहुओं को हमेशा माँ की तरह प्यार दिया, पर वह संदूक हमेशा उनके मन में एक कांटा बनकर चुभता रहा।

अंत्येष्टि के बाद, जब पुरुषवर्ग संगम घाट से लौटे, तो मानसी ने माँजी को एकांत में दादी माँ की अंतिम इच्छा बताई। "माँजी, दादी माँ ने मुझसे कहा था कि उनके अस्थि–कलश के साथ इस संदूक को भी संगम घाट में प्रवाहित कर देना," कहते हुए मानसी की आँखें भर आईं। वह दादी माँ की उस हँसी को याद कर रही थी, जो उन्होंने उस दिन सुनाई थी।

माँजी का मन उथल–पुथल से भर गया। उन्हें अतीत की एक घटना याद आ गई। जब वह नई–नई बहू बनकर इस घर में आई थीं, तब एक बार सफाई करते समय उन्होंने संदूक को स्टूल से उतारकर जमीन पर रख दिया था। दादी

माँ ने उन्हें जोर से डाँटा था, "किसने कहा था इसे जमीन पर रखने के लिए? चल, उठा जल्दी और रख ऊपर...!" उनकी आवाज में एक ऐसी सख्ती थी, जो माँजी ने पहले कभी नहीं देखी थी। माँजी ने तुरंत संदूक को स्टूल पर रखवाया था, पर उनके मन में एक सवाल उठा था—इस संदूक में आखिर क्या है?

उन्होंने सोचा था, शायद साड़ियाँ, गहने, या कुछ नकदी होगी। वह पुराने जमाने की बहू थीं, इसलिए दादी माँ के व्यवहार को सास का रौब समझकर सह गई थीं। पर उनके मन में यह जानने की उत्कट अभिलाषा अंकुरित हो चुकी थी कि आखिर इस संदूक में है क्या? वह सोचती थीं कि शायद दादी माँ के जमाने की कीमती साड़ियाँ और गहने हों। क्या करेंगी इनका? न देती हैं, न खुद पहनती हैं। आखिर एक दिन तो यह सब मुझे ही मिलेगा। यही सोचकर उन्होंने दोबारा उस संदूक पर गौर नहीं किया।

पर जब उनके चार बेटों की शादियाँ हुईं, और चारों बहुएँ घर में आ गईं, तब कई बार उनके मन में यह ख्याल उठा कि दादी माँ अपनी संदूक से कुछ तो निकालेंगी। शायद अपनी बहू को न सही, पर पोतों की शादी में अपनी बहुओं को कुछ देंगी। पर संदूक कभी नहीं खुला। न उनके लिए, न उनकी बहुओं के लिए। और अब, मानसी के मुँह से दादी माँ की अंतिम इच्छा सुनकर, माँजी के पुराने जख्म ताजा हो गए।

माँजी ने बाबूजी को यह बात बताई। बाबूजी भी असमंजस में पड़ गए। "अम्मा को इस संदूक से बहुत लगाव था, ये तो मैं बचपन से जानता हूँ, पर मरणोपरांत भी इसे बाँटना नहीं चाहतीं, ये समझ नहीं आता।"बाबूजी को याद आया कि बचपन में वह जिद करते थे, "माँ, खोलो न इसे... क्या रखा है इसमें?" पर दादी माँ हमेशा फटकार लगाती थीं, "तेरे पिताजी ने कभी नहीं खुलवाया मेरा संदूक, और तुझे बड़ी जिद आ रही है... चल भाग... अपना काम कर...!" उनकी आवाज में एक ऐसी कठोरता होती थी, जो बाबूजी को डरा देती थी।

घर में चर्चा शुरू हुई। संजय, राकेश, और राजन, तीनों भाई संदूक खोलने के पक्ष में थे। संजय, जो सबसे बड़ा था, ने कहा, "औरतों का कपड़ों—गहनों का मोह तो होता है, पर दादी माँ ने तो हद कर दी...!" उसकी आवाज में एक हल्का—सा तंज था, जैसे वह दादी माँ की इस इच्छा को समझ नहीं पा रहा था।

राकेश, जो हमेशा हँसी—मजाक के मूड में रहता था, ने हँसते हुए कहा, "हमें तो कोई आपत्ति नहीं, पर अपनी बहुओं के दिल की तो जान लीजिए पिताजी... बेचारी बरसों से इस संदूक की आस लगाए बैठी हैं!" उसने अपनी पत्नी की ओर देखकर आँख मारी, और कमरे में हल्की—सी हँसी गूँज गई।

माँजी को राकेश की बात चुभ गई। उन्हें लगा जैसे उनके पुराने जख्म को कोई छू गया हो। "यह भी कोई मजाक का वक्त है राकेश?" उन्होंने तीखे स्वर में कहा। उनकी आवाज में गुस्सा था, पर साथ ही एक दर्द भी।

राजन, जो सबसे समझदार था, ने कहा, "माँ, कोरी भावुकता से काम नहीं चलेगा। हमें संदूक खोलकर देखना चाहिए कि इसमें है क्या," उसकी आवाज में एक ठहराव था, जैसे वह सभी की भावनाओं को संतुलित करना चाहता हो।

बाबूजी ने बुझे स्वर में कहा, "होगा क्या बेटा... अम्मा के जमाने की दो—चार साड़ियाँ होंगी। गहने तो उन्होंने कभी पहने नहीं, तो जोड़कर क्या रखेंगी... शायद कुछ नकदी हो," उनकी आवाज में एक थकान थी, जैसे वह इस सारी चर्चा से ऊब चुके हों।

विजय चुपचाप खड़ा था। उसे लग रहा था कि यह सारा बखेड़ा मानसी की वजह से खड़ा हुआ है। मानसी अपराधबोध से घिरी थी, पर वह कुछ कह नहीं पा रही थी। वह कोने में खड़ी थी, अपनी साड़ी का पल्लू बार—बार ठीक करते हुए।

आखिरकार, ताला तोड़ने का निर्णय लिया गया। विजय एक भारी हथौड़ा लाया। हथौड़े की हर चोट के साथ कमरे में एक अजीब—सी सनसनी फैल रही थी। ताला पुराना था, पर मजबूत। दस—पंद्रह मिनट की जद्दोजहद के बाद वह टूट गया। ताले के टूटने की आवाज ने कमरे के सन्नाटे को तोड़ दिया।

बाबूजी ने संदूक को जमीन पर रखा और पालथी लगाकर बैठ गए। माँजी उनके बगल में थीं। बेटे—संजय, राकेश, राजन, और विजय—और उनकी बहुएँ घेरा बनाए खड़े थे। सभी की नजरें संदूक पर थीं। बाबूजी ने धीरे से संदूक का ढक्कन उठाया।

सबके मुँह से एक साथ आश्चर्य की साँस निकली। न साड़ियाँ, न गहने, न नकदी। एक पुरानी गुलेल और कपड़े की थैली में ढेर सारे छोटे–छोटे पत्थर। एक गुलाबी पॉलिथिन में कुछ कागजात दिखे। बाबूजी ने सोचा, शायद बँटवारे के कागज होंगे। उन्होंने पॉलिथिन खोली, पर उसमें ढेर सारी छोटी–छोटी पर्चियाँ थीं।

सबने उत्सुकता से पर्चियाँ उठाईं। जैसे ही पढ़ना शुरू किया, सभी स्तब्ध रह गए। ये प्रेमपत्र थे, जो किसी राजकिशोर ने सुखमिला, यानी दादी माँ, के लिए लिखे थे। पत्रों में प्रेम की ऐसी गहराई थी कि सभी का मन भर आया।

पत्रों से दादी माँ का अतीत खुल रहा था। चौदह वर्ष की उम्र में उनका ब्याह हो गया था। उस समय वह एक अल्हड़ किशोरी थीं, जिनके लंबे घने बाल और चंचल आँखें गाँव के हर नौजवान के दिल में हलचल मचा देती थीं। गाँव का स्कूल, जहाँ सुखमिला अपने भाई बलराम के साथ पढ़ने जाया करती थीं, उसी स्कूल में पढ़ता था राजकिशोर। राजकिशोर एक साधारण परिवार का लड़का था, जिसके सपने बड़े थे। वह हाईस्कूल पास करना चाहता था, ताकि अपने अब्बा को गर्व महसूस हो।

सुखमिला और राजकिशोर की कभी रू–ब–रू मुलाकात नहीं हुई थी। पर राजकिशोर ने सुखमिला को स्कूल के आंगन में, गलियों में, और मंदिर के बाहर देखा था। उसकी नजरें सुखमिला के चेहरे पर ठहर जाया करती थीं। वह अपनी भावनाओं को कागज पर उतारता था–छोटे–छोटे प्रेमपत्र, जो वह सुखमिला के भाई बलराम के हाथों भेजता था।

एक पत्र में लिखा था, "प्यारी सुखी, तुम्हारी वो मुस्कान, जो आंगन में झाँकते वक्त मैंने देखी थी, मेरे दिल में बस गई है। मैं जानता हूँ, तुम्हें ये पत्र पढ़कर शरम आएगी, पर क्या करूँ? मेरा दिल तुमसे बात करने को बेकरार है। बस एक बार, केवल एक बार, संगम घाट पर मिल लो... गंगा को साक्षी मानकर मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।"

पर सुखमिला डरती थी। गाँव के रीति–रिवाज सख्त थे। एक लड़की का किसी अनजान लड़के से मिलना पाप समझा जाता था। फिर भी, वह राजकिशोर के पत्रों को पढ़ती और उन्हें अपने तकिए के नीचे छिपा लेती थी। हर पत्र में राजकिशोर की बेचैनी, उसका प्रेम, और उसकी बेबसी झलकती थी।

एक अन्य पत्र में लिखा थाः "प्यारी सुखी, तुमसे रू–ब–रू बात करने की अभिलाषा लगता है अधूरी ही रहेगी। बलराम ने बताया कि अगले माह तुम्हारा ब्याह है। तुम वो आंगन सूना कर चली जाओगी, जहाँ मैं तुम्हें देखने के लिए छज्जे पर चढ़ता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम भी दुखी हो, पर मेरे ब्याह की बात तब तक नहीं होगी, जब तक मैं हाईस्कूल पास न कर लूँ। हमारे भाग्य में शायद इतना ही साथ लिखा था। मैंने बलराम से कहा था कि बस एक बार तुम्हें संगम घाट पर ले आए, तो गंगा को साक्षी मानकर हम कसम खा लेंगे कि अगले जनम में जरूर मिलेंगे... पर तुम तैयार नहीं हुई। खैर! मैं फिर भी तुम्हारा इंतजार करूँगा, यहीं, संगम घाट पर... ।"

पत्रों से जाहिर था कि सुखमिला और राजकिशोर की मुलाकात कभी नहीं हो पाई थी। सुखमिला के परिवार ने उनकी शादी तय कर दी थी, और राजकिशोर की अधूरी प्रेम कहानी उन पत्रों में सिमट गई थी।

पत्र पढ़कर सभी की आँखें नम थीं। दादी माँ ने अपने प्रेम को पचहत्तर वर्षों तक संदूक में सहेजकर रखा था। वह प्रेम, जो कभी पूरा नहीं हुआ, पर जिसे उन्होंने अपने कर्तव्यों पर हावी नहीं होने दिया। बाबूजी तो जैसे दंग रह गए थे। जीवन के हर उतार–चढ़ाव पर अम्मा ने उनके पिताजी का साथ दिया था। उन्हें परमेश्वर की तरह पूजा था। अपने कर्तव्यों को निभाने में रत्ती भर भी कसर नहीं छोड़ी थी।

मानसी को अब दादी माँ की बात समझ आई। उन्होंने चाबी इसलिए फेंक दी थी, क्योंकि वह उन पलों को दोबारा नहीं जी सकती थीं। पर वह चाहती थीं कि उनकी यादें, उनका प्रेम, संगम घाट की गंगा में विलीन हो जाए।

बाबूजी ने पत्रों को सहेजकर संदूक में रखा और कहा, "अम्मा की इच्छा पूरी होगी। यह संदूक संगम घाट में प्रवाहित होगा।"

अगले दिन, परिवार संगम घाट पर इकट्ठा हुआ। गंगा की लहरें धीमे–धीमे किनारे से टकरा रही थीं। हवा में अगरबत्तियों और फूलों की गंध थी। बाबूजी ने दादी माँ के अस्थि–कलश को गंगा में प्रवाहित किया, और फिर संदूक को भी। संदूक धीरे–धीरे लहरों में डूब गया, जैसे गंगा दादी माँ की अधूरी प्रेम कहानी को अपने आलिंगन में ले रही हो।

मानसी मन–ही–मन प्रार्थना कर रही थी, "दादी माँ, अगले जनम में आपकी सारी अधूरी इच्छाएँ पूरी हों।" ◆

पता : भगवानदास की गली, आदर्श स्कूल के सामने,
गणेश गंज,मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)–231001
मो. : 7007224126

गीतू लौट आई

❑ अर्चना त्यागी

विश्वविद्यालय का वह आवासीय बंगला एकदम सुनसान पड़ा हुआ था। बंगले में रहने वाली आचार्या डॉक्टर गौतमी जी ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। पूरा विश्वविद्यालय स्टाफ सदमे में था। सभी ने मिलकर और व्यक्तिगत रूप से भी गौतमी जी को समझाने की पूरी कोशिश की थी लेकिन बात बनी नहीं। उन्होंने किसी की भी बात का प्रतिकार नहीं किया बस खामोश रहकर अपना निर्णय ले लिया था। बिना किसी से चर्चा किए अपना इस्तीफा मेल द्वारा प्रेषित कर दिया था। उसके बाद पूरे स्टाफ को पता चला लेकिन किसी के पास कोई उपाय नहीं था उन्हें उनके दुःख से उबारने का। उनकी दस साल की हंसती–खेलती बच्ची गीतू को वापस उनके पास लौटा लाने का।

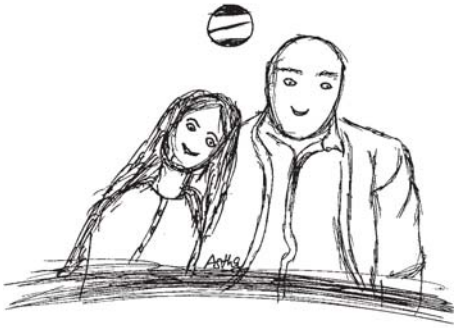

सभी उस घड़ी को कोस रहे थे जब वह दुर्घटना विश्वविद्यालय के आवासीय परिसर में घटी थी। सभी खुद को दोषी करार दे रहे थे जबकि दोष किसी का भी नहीं था। इतनी प्यारी और खुशमिजाज बच्ची के साथ ऐसा होगा, सपने में भी कोई नहीं सोच सकता था। विश्वविद्यालय की काबिल आचार्य गौतमी जी को वापस परिसर में लौटा लाने को सभी प्रयत्नशील थे।

''गौतमी जी गीतू को भूलना चाहती हैं किंतु उससे जुड़ी हर वस्तु उन्हें उसकी याद दिलाती है। इससे तो अच्छा है कि वे अपना फिर से तबादला करवा लें और वापस उसी शहर में चली जाएं।''

प्राचार्य संजीदा ने चर्चा में अपना मत रखा। यह चर्चा आवासीय परिसर के सामुदायिक भवन में चल रही थी। गौतमी जी को छोड़कर बाकि सभी कर्मचारी चर्चा में शामिल हुए थे। उनके इस्तीफे को लेकर ही यह चर्चा चल रही थी।

''आपका सुझाव अच्छा है, संजीदा मैडम। कुलपति महोदय स्वयं उनकी हर तरह से मदद करने को तैयार हैं किंतु एक समस्या है। उस विश्वविद्यालय में अब वह पद रिक्त नहीं है जिस पर गौतमी जी काम कर रही हैं। एक सामान्य आचार्या का ही पद रिक्त है। उप कुलपति के समकक्ष पदासीन होकर वापस नई नौकरी की तरह शुरुआत करना अब उनके लिए संभव नहीं हो पाएगा।''

विभागाध्यक्ष गणपत जी ने अपने विचार सबके सामने रखे। कक्ष में थोड़ी देर के लिए मौन पसर गया। दोनों आचार्य अपनी–अपनी जगह पर सही थे परंतु दोनों की बातों में विरोधाभास था। सहायक आचार्या नीता उस चर्चा के सभी बिंदुओं को एक कागज पर लिखती जा रही थी। कुलपति महोदय की ओर से उन्हें यह काम दिया गया था। वह स्वयं चर्चा में उपस्थित नहीं हुए क्योंकि उन्हें लगा कि उनके सामने स्टाफ खुलकर अपने विचार प्रस्तुत नहीं कर पाएगा। अंतिम निर्णय उन्हें ही लेना था।

''गौतमी जी को दूसरे बंगले में भेज दिया जाए तो शायद कुछ समय के बाद वे गीतू की यादों से खुद को अलग करने में सफल हो पाएं।''

यह सुझाव आचार्य नवीन की ओर से दिया गया। थोड़ी देर फिर से मौन छाया रहा। आचार्या आशिमा की ओर से भी एक सुझाव रखा गया।

''आचार्य नवीन की बात का समर्थन करते हुए मैं बस यही कहना चाहती हूं कि गौतमी जी के बंगले को बच्चों के सामुदायिक भवन में बदल दिया जाए। गीतू की सभी चीजों को यथावत रखते हुए वहां पर बच्चों की रुचि के साधन जुटाए जाएं तो गौतमी जी को भी अच्छा लगेगा।''

चर्चा के दौरान आए सभी सुझावों पर विचार करने के बाद यह निर्णय लिया गया कि गौतमी जी को मिला हुआ बंगला बच्चों का सामुदायिक भवन बना दिया जाएगा। बच्चों की किताबें, खिलौने, कला, संगीत वाद्य और नृत्य तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का संचालन केंद्र उसको रखा जाएगा। इस निर्णय पर सभी एकमत हो गए। कुलपति महोदय का सख्त निर्देश था कि गौतमी जी को इस विषय में कोई भी जानकारी नहीं देगा। जब वे इस्तीफे की आखिरी तारीख को अपना सामान ले जाने के लिए परिसर में आएं, तभी उनको यह जानकारी मिले।

एक महीने बाद भारी मन से गौतमी जी ने विश्वविद्यालय परिसर में कदम रखा। वे अपने पति के साथ पैदल चलते हुए अपने बंगले के बाहर आ गई। बंगले का कायापलट हो गया था। उसके बाहर गीतू की फोटो के नीचे बड़े बड़े शब्दों में लिखा था।

''गीतू भवन''

बंगले के बाहर एक चौकीदार बैठा हुआ था। उसने गौतमी जी को खड़े होकर प्रणाम किया।

''मैडम आप भीतर नहीं जा सकते हैं। बंगले की चाबी कार्यालय में जमा हो गई है। आपको पहले वहीं बात करनी पड़ेगी।'' उसने विनम्रता से कहा। गौतमी जी चुपचाप कार्यालय की ओर बढ़ गई। उनके पति भी उनके साथ चल रहे थे। कार्यालय पहुंची तो पूरा विश्वविद्यालय स्टाफ जैसे उनके स्वागत के लिए तैयार खड़ा था।

''सबसे पहले आपको ''गीतू भवन'' का लोकार्पण करना है। गीतू की याद में विश्वविद्यालय की ओर से बच्चों के लिए एक शुरुआत की गई है। गीतू उस दिन बच्चों के साथ खेलने के लिए ही बालकनी से नीचे कूद गई थी और अनहोनी हो गई।''

सभी एक स्वर में बोले। गौतमी जी रो पड़ी।

''अनहोनी नहीं। मेरी गलती थी। मैं सब दरवाजे बंद करके गीतू को अकेला छोड़कर कार्यालय में हस्ताक्षर करने आ गई थी। बालकनी का दरवाजा बंद करना भूल गई। सब मेरी गलती से हुआ है।'' उन्होंने रोते–रोते दोनों हाथों से अपने मुंह को ढाप लिया।

''गलती तो उन बच्चों की भी हुई जिन्होंने आपको घर से निकलते देखकर तुरंत गीतू को खेलने के लिए बुला लिया। और हां उन सबकी भी गलती है जिन्होंने अपने बच्चों को घर में रोक कर नहीं रखा।''

गणपत जी ने उदास स्वर में कहा।

''मैडम कोई नहीं जानता था कि गीतू नीचे छलांग लगाएगी और गिरते ही उसकी सांस रुक जाएगी। आप पहली बार तो उसे घर पर अकेले छोड़कर नहीं आई थी। पिछले एक महीने से सभी लोग हस्ताक्षर करने कार्यालय आते हैं, आप भी आती थीं। गलती आपसे अब हो जायेगी यदि सदमे के कारण आप नौकरी छोड़ देंगी। कठिन समय में डरकर घर में बैठ जाने का उदाहरण आप अपने विद्यार्थियों के लिए खड़ा कर देंगी जो आपको अपना आदर्श मानते हैं।''

कुलपति महोदय अपने कार्यालय से बाहर आकर

बोले। गौतमी जी कुछ बोल नहीं पाईं। सबके साथ ''गीतू भवन'' की ओर बढ़ गई जहां उनकी प्यारी बिटिया की यादें संजो कर रखी गई थीं।

''आई, गीतू बनना है, मुझे। बंगले पर फोटू लगेगी।''

कमला बाई जी की बेटी उनके पास खड़ी गीतू की फोटो की ओर उंगली करके उनसे कह रही थी। बंगले की सफाई करके दोनों बाहर खड़ी हो गई थीं।

''क्यों न इस बच्ची की परवरिश गीतू की तरह करें।''

गौतमी जी के पति ने धीरे से उनके कान में कहा। उन्होंने कनखियों से उस बच्ची को देखा। गीतू की हमउम्र थी। आठ नौ साल की उम्र। रंग जरूर सांवला था। बड़े भोलेपन से उन्हें रिबन काटते हुए देख रही थी।

गौतमी जी की आंखों से आंसू बह रहे थे। उन्होंने उस बच्ची को गोद में लेकर रिबन काटा।

''सर, इस्तीफा वापस ले रही हूं। गीतू लौट आई है। मैं इस बच्ची को गीतू के हिस्से की परवरिश दूंगी।''

उन्होंने कुलपति महोदय को संबोधित करते हुए कहा।

सभी उदास थे किंतु उस स्थिति में भी एक मुस्कान सबके चेहरे पर तैर गई। वह बच्ची अनजान थी इस बात से कि उसको गोद में क्यों उठा लिया किसी मैडम ने। ◆

पता : डी–1, ओम विहार, मिशन स्कूल के सामने, रुड़की, उत्तराखंड–247667
मो. 7983481584

लघुकथा

ईमानदारी का इनाम

❑ **डॉ. अलका जैन आराधना**

आज धूप बहुत तेज हो गई थी। रोज वाली कॉलोनी के बजाय रघु नई कॉलोनी में जाकर आवाज लगाने लगा– सब्जी ले लो। एक मैडम ने उससे सब्जियां खरीदी और पर्स में से पैसे निकालकर रघु को दे दिए। थोड़ा आगे बढ़ने के बाद प्यास के मारे उसका गला सूखने लगा। आज जल्दीबाजी में वह पानी की बोतल लाना भूल गया था। प्यास बुझाने के लिए उसने एक खीरा उठाया ही था कि देखा मैडम जी का पर्स ठेले पर रखा हुआ था। पर्स में 500, 200 और 100 के कई नोट थे। पूरे महीने सब्जी बेचकर भी वह इतने रुपए नहीं कमा पाता। एक पल भी सोचे बिना वह वापस घूम गया था और डोर बेल बजाई। मैडम ने घबराए हुए दरवाजा खोला था। उन्हें बिल्कुल भी उम्मीद नहीं थी कि अनजान सब्जीवाला पर्स लौटाने आएगा। मैडम ने 500 का नोट निकाल कर रघु को देना चाहा। रघु के मना करने पर मैडम ने कहा – ''मेरे बंगले के ऊपर वाले दोनों फ्लोर पर मैं बच्चों के लिए मैस चलाती हूं और उसके लिए मुझे रोज ढेरों सब्जियां चाहिए होती हैं। तुम रोज सब्जियां बेचने आ जाया करो, तुम्हारी सारी सब्जियां यही बिक जाएंगी।'' रघु ने मुस्कुराते हुए कहा– ''जी जरूर।'' रघु को उसकी ईमानदारी का इनाम मिल गया था।

पता : फ्लैट न.एफ.–1, उत्सव रेजीडेंसी, प्लॉट न. 118–119, गायत्री नगर बी, महारानी फार्म, दुर्गापुरा, जयपुर–302018
मो. : 09828037056

वो सर्द रात

❑ शोभा गोयल

जनवरी की डरावनी सी सर्द रात। मावट से आच्छादित बादल समूचे गगन को घेरे हुए थे। अंधकार चारों तरफ पसरा हुआ था। जोधपुर रेलवे स्टेशन पर जन सैलाब उमड़ा पड़ा था। प्लेटफार्म पर कोलाहल इतना कि एक दूसरे की आवाज मुंह को कान के पास ले जाकर सुननी पड़ रही थी। वाराणसी जाने वाली ट्रेन तीन घंटे लेट है यह बात स्टेशन मास्टर से तीन बार पूछने पर पता चली थी। तीन घंटे के लिए वापस घर जाना और लौटकर आना इन ठिठुरन भारी रात में मुमकिन नही था। फिर जिनके घर मेहमान थी उन्हें बेवजह रजाई से निकलने में कोफ्त होगी। इस अफसोस से बचने के लिए मैंने स्टेशन पर समय गुजारना ठीक समझा।

रेलवे स्टेशन मुझे अपने बचपन के मोहल्ले जैसा प्रतीत होता है। मैं अपने आस–पास के मुसाफिरों से बातें करती हूँ। कुछ से जान पहचान निकल आती है। और कुछ से जान पहचान बना लेती हूँ। मेरी सहेलियों और परिचितों में अधिकांश लोग रेलवे स्टेशन पर अकस्मात मिलने वाले मुसाफिर ही है। इन मुसफिर्रो से मुझे अपनापन नजर आता है। इनमें से कोई बुआ, कोई चाची, तो कोई पक्की सहेली बन जाती है। भाई या अंकल के रूप में कुछ पुरुषों ने जीवन की मुश्किल राह पर साथ निभाया है। मैं अक्सर एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक बेवजह यात्रा करती रहती हूँ। मुझे यह समय बिताने का जरिया लगता है। कुछ घटित घटनाओं को मैंने कहानी की शक्ल में ढाल लिया और उन्हें अक्सर सुनाया करती हूं।

उस रात जब मैंने प्रतीक्षालय के अंदर झांक कर देखा, लगभग सभी कुर्सियों पर लोग जमे बैठे थे। कुछ ने तो जमीं पर चादर बिछाकर और कम्बल ओढ़ कर कब्जा कर रखा था। वहां जाने का मन नही हुआ। मैंने रेलवे स्टेशन पर स्थित बुक स्टॉल से दो बुक खरीदी और एक बेंच पर बैठकर कुछ देर तक रेलवे पटरियों को ताकती रही। दो समानांतर चलने वाली ये रेल पटरियां कहीं किसी मोड़ पर तो एक होती होंगी। कभी ट्रेन अपना रूट बदलती है तब दोनों पटरियां एक दूसरे को क्रॉस करती हुई अलग–अलग राहों पर निकल जाती हैं या यूं कहे पटरियां तो स्थिर रहती है जड़ होती है। मगर रास्ते ही कहीं दूर निकल जाते हैं। किसी नयी मंजिल की तलाश में.....भूल जाते हैं हम पीछे कुछ साथ चलने वाली राहों को छोड़ आये है। जिन पर हमने कदमों के निशान छोड़े है कुछ यात्राएं तय की हैं.....। सहसा एक हवा के झोकें से मेरी

देह में सिरहन सी दौड़ गयी। मैंने अपनी पश्मीना शाल को और कसकर लपेट लिया। सर्द रातों में गर्म कपड़े भी बेमानी नजर आते हैं। फिर भी ठंड से बचने की असफल सी कोशिश करते ही हैं। मैंने अपनी किताब निकाल ली।

प्लेटफार्म की मद्धिम रोशनी में किताब पढ़ने का अपना एक अलग ही आनंद है। किताब के आखिरी पन्ने पर अंतिम पैराग्राफ पर नजर दौड़ाने लगी। अक्सर मैं कहानियों के प्रारम्भ से पहले मैं आखिरी अंश पढ़ना पसंद करती हूँ। ताकि मुझे पता लग सके की कहानियों में अलगाव हुआ है या मिलन। अंत सुखद हों तो एक उम्मीद बनी रहती है कि दुनिया में कुछ अच्छा होना बाकी है। अंत दुखद हो तो सहानुभूति उमड़ पड़ती है। अनायास ही ईश्वर की तरफ हाथ जुड़ जाते है भगवान खैर करे।

मैंने अंत पढ़कर किताब के मुख पृष्ठ की ओर रुख किया। मैं लेखक की लिखी भूमिका नहीं पढ़ती। मैं पहला पृष्ठ पलट ही रही थी कि एक मालगाड़ी धड़ाधड़ आवाज करती हुई मेरे सामने से गुजर गयी। मालगाड़ी के जाने के बाद देर तक स्टेशन थरथराता रहा था। उसके स्पंदन की आवाज देर तक गूंजती रही। ट्रेन अकेले कहाँ जाती हैं उसके साथ चली जाती है प्लेटफार्म की रौनक, वहां का उपजा कोलाहल और उसकी आत्मा। शेष रह जाता है उदास और ठहरा हुआ रेलवे स्टेशन और उसका प्लेटफार्म.....। किसी और ट्रेन का इंतजार करते हुए। एक के जाने के बाद दूसरे का इंतजार.....। कभी न खत्म होने वाला इंतजार.....। एक पिता लौट जाता है बेटी को विदा करके.....और उम्मीदों के डोर को पकड़े और एक अनजाना सा डर लिए भी एक पिता लौटता है। जब उसके कलेजे का दुकड़ा उसका बेटा पढ़ाई या नौकरी के सिलसिले में पहली बार दूसरे शहर जाता है। एक भाई एक दोस्त की आंखें तब नम हों जाती, जब वह कहता है चलता हूं.....जाने वाला हाथ हिलाकर विदाई लेता है। मालगाड़ी ने भले ही हाथ नहीं हिलाया। मगर देर तक प्लेटफार्म की धड़कनें धड़कती रही। इसी के साथ मुझे आभास हुआ कि इसी बेंच के दूसरे छोर पर कोई और भी बैठा है। वह अपने ही ध्यान मग्न में कैद थी। मैंने उसे दृष्टिभर देखा। हाथ में एक छोटा सा थैला पकड़े हुए थी। सिर पर पीले रंग की एक साधारण शॉल ओढ़ी हुई थी। ठंड की वजह से उसकी नाक लाल हो गयी और उसके होंठ कंपकपा रहे थे। आंखों में पनीलापन था। मैं उसे समझने का प्रयास करने लगी कि वह मूरत कौन है। संभ्रात परिवार से है या दलित परिवार से। वैसे मुझे इन दोनों स्तरों से कोई फर्क नहीं पड़ता फिर भी मैं बातचीत करने के लिए कोई सूत्र तलाशने लगी।

नमस्ते, मै वाराणसी जा रही हूँ। मेरी ट्रेन तीन घंटे लेट है। आप कहाँ तक जायेगी। आखिर मेरे अंदर बैठे हुए जिज्ञासु ने पूछ लिया।

उसने मुझे अचकचा कर देखा फिर संक्षिप्त सा जवाब दिया—कानपुर।

अच्छा क्या तुम भी मरुधर एक्सप्रेस से जा रही हों।

हाँ — फिर से उसका छोटा जवाब था।

कौनसे कोच में हों.....मैंने बातचीत आगे बढ़ाने के उद्देश्य से पूछ लिया।

एस—9 जनरल कोच। उसने परेशान होते हुए जवाब दिया।

मेरा तो फर्स्ट एसी में रिजर्वेशन है। मैं एडवोकेट हूँ। मैं फ्लाइट से यात्रा कर सकती हूँ। मगर मुझे रेल यात्रा ज्यादा पसंद है। आप क्या करती है?

वह कुछ नहीं बोली। अपना मुंह दूसरी ओर घुमा लिया। मैं समझ गयी, इसे मुझसे बात करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। मैं मन मसोस कर रह गयी। अपनी बुक का पहला पृष्ठ पढ़ने लगी। कुछ सेकंड गुजरे होगे वह जोर जोर से खांसने लगी। उसकी खांसी लगातार बढ़ती जा रही थी। मैंने अपनी पानी की बोतल उसको पकड़ाते हुए कहा इसमें गर्म पानी है, आप पी लीजिये। थोड़ी राहत मिलेगी।

उसने मुझे देखा और पानी की बोतल ले ली। रात गहराने लगी थी और सर्दी लगातार बढ़ रही थी। इस समय मैं मुझे खुद पर ही कोफ्त हों आयी। क्या जरूरत थी रात में निकलने की.....ओढ़ रजाई मजे से सोती और सुबह निकलती। मगर एक दिन बचाने के चक्कर में मैंने अपनी रात काली कर ली। मुझे क्या पता था मरुधर को भी आज ही लेट होना था।

उसने मुझे पानी की बोतल वापस करते हुए शुक्रिया कहा। उसको खांसी से निजात मिल चुकी थी। मुझे चाय की तलब महसूस हुई। मैंने उससे भी शिष्टाचार वश पूछा— आप चाय पिएंगी। अब तक वो भी सहज हो चुकी थी। हाँ में सिर हिला दिया मैं पास ही के वेंडर से दो डिस्पोजल कप में चाय ले आयी। हम दोनों ने चाय की चुस्कियां ली। गर्म चाय से सर्दी से कुछ राहत सी महसूस हुई। मैंने बातचीत करने का

मन फिर से बनाया आप कानपुर अकेले जा रही है मेरा मतलब कोई साथ में नहीं है।

नहीं..... मैं कुछ काम से आयी थी। अब परिवार के पास लौट रही हूँ। उसने सहजता से जवाब दिया।

मैं भी जोधपुर एक केस के सिलसिले में आयी थी। अब वापस लौट रही हूँ घर की बड़ी याद आ रही हैं।

वह खामोश रही कुछ बोलने का उपक्रम भी किया मगर वह कुछ बोली नही।

मैं बातूनी बात का सिरा पकड़ने की कोशिश कर रही थी और वो छुड़ाने का। एक अंतिम कोशिश करते हुए पूछ लिया– आप जोधपुर दोबारा कब आएँगी।

मैं यहाँ वापस कभी नहीं लौटूंगी। यह मेरे लिये यादगार शहर नहीं, पीड़ादायक शहर रहा है। इसकी मिट्टी खून के रंग से रंगी है। मैं यहाँ से जल्द से जल्द निकल जाना चाहती हूँ ईश्वर का न जाने कौनसा इम्तिहान बाकी था जो इस ट्रेन को भी लेट कर दिया।

इस शहर से आप इतनी खफा क्यों है? मैंने हैरत से पूछा।

क्या करेगी आप जानकर.....एक बड़ी कहानी है..... छोड़ो

बता सको तो बता दो। मैं कुछ कर तो नहीं सकती पर आपका दिल हल्का हो जायेगा। अब मैं उसके बिल्कुल पास खिसककर बैठ चुकी थी। मैंने उसके कंधे को हाथ से थपथपा दिया, नयनों में जाने कब से रुका हुआ सैलाब बह निकला।

मैं इस अप्रत्याशित स्थिति के लिये तैयार नहीं थी। इस गहन अंधियारी रात में मैंने उसके दिल के अनछुए तार छेड़ दिए तो अब मुझे ही सम्भालना था। कभी–कभी हम इंसानों को समझने की भूल कर बैठते है वो मैं जिसे हमराही मानकर बात करना चाह रही थी वो अकेलापन ढूँढ रही थी। उसने बात शुरू की.....।

एक समय था जब कानपुर शहर में मेरा छोटा सा घर और दो छोटे बच्चे थे बेटी पृथा और बेटा पार्थ..... मेरा हँसता खेलता परिवार था। कानपुर उत्तर प्रदेश का एक बड़ा सा शहर है। औद्योगिक महानगरी के नाम से जाने वाला यह प्रदेश हमारी जन्मभूमि है। यहाँ हम जीवन के सभी रंगों से रूबरू हुए है। पृथा और पार्थ दोनों से मेरा घर गुंजायमान रहता। पति सरकारी इंजीनियर थे खुद का घर था। कुल मिलाकर हमारा सुखी संसार था। बेटी पृथा कॉलेज में है उन्मुक्त सी, चंचल सी परी.....नाम के अनुरूप ही सबसे अलग, सबसे प्यारी, सबसे न्यारी। पिता की परी अपने पापा का बेहद ख्याल रखती। पिता अरविन्द उसकी हर इच्छा पूरी करने को तत्पर रहते। वह किसी भी चीज की फरमाइश करती चाहे वह एक रुपए की हो या लाख रुपए की। अरविंद की कोशिश रहती, वह उसे निराश न करें।

पृथा के पास लगभग 80 के आसपास ड्रेस होगी, करीब 20 जोड़ी जूते सैंडिल.....इतना लाड प्यार देखकर कई बार मैं अरविंद से कहती, इसे एक दिन पराए घर जाना है इसकी आदत मत बिगाड़ो। वह कहते थे, पराये घर की चिंता में बेटी की खुशियों का गला मत घोंटो। पराया घर जाने कैसा मिले इसलिए इसे दुनिया के तमाम सुख भोगने दो।

वैसे भी अरविंद पराये घर के नाम से कांप जाते थे अपनी बेटी की जुदाई का गम का सोचकर ही सिहर जाते थे। वो अक्सर कहते–क्या हम बेटियों को सदा के लिए अपने पास नहीं रख सकते। बेटियां तो राजा–महाराजाओं की भी ब्याही जाती हैं और दूसरे घर के आंगन में ही सुशोभित होती हैं। अरविंद तुम तो ठहरे एक साधारण इंसान..... पृथा को एक दिन इस आंगन को छोड़ कर जाना होगा अरविंद देर तक सोचते रह जाते।

पृथा मेरी बिटिया बहुत प्यारी थी। उसने सपने में भी किसी का दिल नहीं दुखाया था। वह सबकी मदद करती थी। हमेशा खिलखिलाती, सबकी चहेती सबके दिलों पर राज करती थी। पढ़ाई में हमेशा अव्वल आती थी।

टीचर्स और सहपाठी उसकी तारीफ करते नहीं थकते थे। मिलनसार व्यक्तित्व की धनी थी पृथा। मुझे याद है वह दिन जब पार्थ बगीचे में एक फूल पर मंडराती तितली के पीछे भाग रहा था। उसे रोकने के लिए पृथा भी पीछे भाग रही थी। मैं दोनों को देखने लगी। पार्थ ने तितली के दोनों पंखों को मिलाकर अपनी चुटकी से उसे पकड़ लिया था, पृथा ने विरोध किया– पार्थ उस तितली को छोड़ो, उसे दुःख हो रहा होगा, जल्दी छोड़ो। पृथा की आवाज में भय और चिंता थी। पार्थ तितली पकड़कर उससे खेल रहा था। उसने पृथा की बात को अनसुना कर दिया था। वह बार–बार पार्थ को रोक रही थी मगर वह मान नही रहा था। एकाएक पृथा ने पार्थ के हाथ पर चींटी काटी, वह दर्द से बिलबिला उठा उसकी मुठ्ठी की पकड कमजोर पड़ गयी और तितली उड़ गयी।

ये क्या किया दीदी आपने? कितनी प्यारी तितली थी मैं उससे खेलता, बड़ा मजा आता। आपने उसे उड़ा दिया– पार्थ गुस्से में बोला।

बस कर दे तू, उस बेजुबान कीट को तू अपना खिलौना समझ रहा था, उसके दर्द की कोई परवाह नहीं।

एक तितली के दर्द की परवाह मैं क्यों करूं भला। मैं तो उसके पंख उखाड़ कर अपनी नोट बुक में सजाता– पार्थ ने बेपरवाही से कहा।

शटअप, अब किसी को तंग किया तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। कैसे लोग होते हैं। इन मूक प्राणियों पर जरा से सुख के लिए अत्याचार करते हैं और मजे लेते हैं। इन्हें दया नही आती.....।

मेरी पृथा इतनी संवेदनशील है मुझे तो पता ही नहीं था.....।

जिस उम्र में पृथा थी, उस उम्र में लडकियाँ सजने संवरने का काम करती थीं। उम्र के इस बदलाव पर विपरीत लिंग का आकर्षण होना भी स्वाभाविक है मगर इन सबसे बेखबर पृथा का अलग ही शौक था। वह कविता लिखती, कहानियों में जीती। जहाँ और लड़कियां मेकअप का सामान खरीदतीं, वह उस समय प्रेमचंद और सुभद्राकुमारी की किताबें पढ़ती, उसे मेकअप में कोई रुचि नहीं थी। वह कोर्स की किताबों को गले लगाती। खाली समय में कालजयी लेखकों को पढ़ती। घर के कामों में मेरा हाथ बंटाती। मेरी सबसे प्यारी गुड़िया थी।

सब कुछ अच्छा चल रहा था। एक दिन पृथा ने लगभग मेरे गले से झूलते हुए कहा– ममा मेरी बात सुनो हमारा कॉलेज ट्रिप पर जा रहा है जोधपुर..... राजा जोधा का शहर.....। हम पूरे तीन दिन वहां रहेंगे।

यह तो अपने शहर से बाहर ही नहीं राज्य से भी बाहर है बेटा..... तो क्या हुआ ममा..... है तो इण्डिया में ही ना..... मगर।

मेरी बात पूरी होने से पहले ही वह बोल पड़ी– ममा टीचर्स स्टूडेंट्स सब जा रहे हैं हमारे साथ। केयर टेकर भी हैं आप फिक्र न करें। मैं यूँ जाऊंगी यूँ लौट आऊंगी। बस तीन दिन की ही तो बात है। आप बस इस ट्रिप के लिए हाँ करें। मैं जाना चाहती हूँ लेकिन पृथा, पूरे तीन दिन हम सबसे अलग वो भी टूर पर.....वहां लड़के भी होंगे.....मेरा मन नहीं मानता। कुछ ऊंच–नीच हों गयी तो.....मैंने अपना मत रखा कैसी अजीब सी बातें कर रही है ममा आप। यह पुरानी टिपिकल औरतों की मेंटीलिटी वाली सोच है। ऐसा कुछ नहीं होता। अब सब पिकनिक और ट्रिप जाते हैं। सब बच्चे कैरियर ओरियेन्ट हैं पढ़ाई में व्यस्त रहते हैं। लाइफ में कुछ कर गुजरने की सोचते हैं। वो इस तरह फिजूल की बात नहीं सोचते..... पृथा ने अपनी आंखें फैलाते हुए कहा। लेकिन पृथा, मुसीबत कह कर नहीं आती।

तो क्या मेरे अकेले के उपर ही आएगी। अच्छा मान लिया.....वहां सम्हालने के लिए सब लोग हैं और मैं बच्ची नहीं हूं। और मान भी लो, मुसीबत आएगी भी तो क्या गारंटी है, यहाँ आपके सामने नहीं आएगी।

अच्छा ठीक है, मैं मान भी जाऊं तो क्या जरूरी है पापा मान जायेंगे। वह तुझे इस ट्रिप की परमिशन कभी नहीं देंगे पृथा।

आप समझाना उन्हें, मैं भी कोशिश करूंगी, मुझे पूरा यकीन है कि वे मान ही जायेंगे।

हाँ ठीक हैं।.....मैंने उसे दिलासा देते हुए आश्वस्त किया।

शाम को अरविन्द के आने पर पृथा ने अपनी बात कही। जैसी मुझे आशा थी, वैसे ही अरविन्द ने रिएक्ट किया।.....उन्होंने उसकी बात को सिरे से नकार दिया।

पापा मैं लड़की हूँ इसलिए आप मुझे जाने नहीं दे रहे हैं। मेरी जगह पार्थ होता तो.....उसे आप आसानी से भेज देते। यही फर्क होता है लड़के और लड़कियों में लड़के लड़कियों में यह बहुत बड़ी खाईं है। इसे पाटना नामुकिन सा है। पृथा के आंखों में आंसू आ गये। यू नो पापा आज आप लोग मुझे जाने नहीं दे रहे है कल मैं दूसरे घर चली जाऊंगी तो क्या वे मुझे परमिशन देंगे। जब मेरे पापा ही हाँ नहीं कर रहे हैं तो आप दूसरों से कैसे उम्मीद कर सकते है। .....फिर कुछ देर रुककर बोली– मुझे नहीं पता मेरी जिंदगी में दोबारा ट्रिप करने का मौका आएगा या नहीं। एक बार पापा मैं अपनी जिंदगी जीना चाहती हूँ। इस बार आप जाने दें पापा.....। आगे मैं कभी कुछ नहीं मांगूगी। कोई जिद नहीं करूंगी न ही कोई इच्छा।

मायूस सी पृथा ने अपनी नजरें हम दोनों के चेहरे पर टिका दीं। हम उसे नाखुश नहीं देख सकते थे। न चाहते हुए भी हमें हाँ करना पड़ा।

हमने हाँ तो कर दी थी लेकिन मेरा माँ–मन क्यों घबरा रहा था। पृथा जोधपुर चली गयी। उसके जाते ही घर में सूनापन पसर गया। मुझे जाने क्यों लग रहा था कि जैसे मैंने अपनी बेटी को हमेशा के लिए विदा कर दिया हो। अब वह कभी नहीं लौटेगी। जाने क्यों बार–बार लग रहा था कि वह जा चुकी है। मैंने भगवान के आगे प्रार्थना में दोनों हाथ जोड़ दिए– हे ईश्वर ! मेरी बेटी को हर बुरी बला से बचाना।

जोधपुर पहुंचते ही पृथा ने फोन किया। उसने चहकते हुए अपने आगे की प्लानिंग बताई। वह सही सलामत है, यह जानकर दिल को थोड़ी तसल्ली हों गयी।

अगले दिन उसने मेहरानगढ़ किला और उम्मेद महल की फोटो क्लिक करके हमें भेजी। विभिन्न मुद्राओं में खींची गयी फोटो में हमारी बेटी बेहद खुश नजर आ रही थी। माता पिता यही तो चाहते हैं कि उनके बच्चे सदा खुश रहें। हँसते खेलते बच्चों को देखकर माँ–बाप अपनी हर परेशानी को भुला देते हैं। वह सुबह शाम फोन करके हमें ट्रिप की हर बात बताती, आज क्या खाया–क्या पहना। कहाँ घूमी। तसल्ली थी कि वह सुकून में है। तीन दिन हमने उसकी आंखों से पूरा जोधपुर घूम लिया था। अरविन्द ने पार्थ से वादा किया कि इस समर वैकेशन में परिवार सहित जोधपुर चलेंगे। पार्थ को पृथा से जलन होने लगी थी। कहने लगा कल दीदी आएगी तो वह अपनी हर फरमाइश पूरी करवायेगा।

तीन दिन गुजर गये ट्रिप से पूरा स्कूल लौट आया मगर पृथा..... । पृथा भी लौटी, पैरों पर चलकर नहीं अर्थी पर लेट कर.....डेथ बॉडी बनकर।

स्कूल प्रशासन ने "बड़े खेद के साथ सूचित किया कि आपकी बेटी एक हादसे का शिकार हो गयी और वह इसको बर्दाश्त नहीं कर सकी। उसने अपने आपको खत्म कर लिया। भगवान आपको इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे" के नोट के साथ अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली। संवेदनाएं और नैतिक जिम्मेदारी यहीं तक सीमित रह गयी जब उन्होंने पृथा का सामान, मोबाइल और उसका सुसाइड नोट हमें थमाया..... ।

अंतिम संस्कार की तैयारी शुरू हो गयी। अंतिम संस्कार में शामिल होने आये लोगों ने तरह–तरह बातें कीं। कुछ ने बेटी के चरित्र पर ऊँगली तानी तो किसी ने हमारी परवरिश को जिम्मेदार ठहराया। जितने मुंह उतनी बातें। कुछ परिचितों और दोस्तों ने तो हमसे किनारा ही कर लिया था। दुःख और क्षोभ क्या होता है इसकी परिभाषा से हम अच्छी तरह परिचित हो गये।

सुसाइड नोट में लिखा था– पापा, आपने इस ट्रिप के लिए मना किया था। मुझे आपकी बात मान लेनी चाहिए थी। मगर उससे मिलने का मोह मुझे यहाँ खीच लाया और उसने मेरे साथ गलत किया.....मैं यह सब बर्दाश्त नहीं कर सकती। आप लोगों के पास मै किस मुंह से वापस लौटूं। इसलिए इस दुनिया को अलविदा कह कर जा रही हूँ। जानती हूँ आप मुझे कायर कहेंगे। मगर मैं माथे पर कलंक लेकर नहीं जी सकती। मुझे माफ कर देना पापा..... । अलविदा.....उसके कागज पर टपकी आंसू की बूंदे सूख चुकी थी। कलाई से बहते खून के कतरे चमक रहे थे। अरविन्द यह सब बर्दाश्त नहीं कर सके। उनके कलेजे का टुकड़ा थी पृथा। जिसके अलग होने के नाम से कांपते थे आज वो हमेशा के लिये..... अरविन्द के सीने में तेजी से दर्द उठा और इस दर्द के साथ ही सब खत्म हो गया। हम बिल्कुल अकेले हो गये। इन पांच दिनों में हंसती–खेलती दुनिया में जहर घुल गया।

घर के दो सदस्य काल के ग्रास बन गये। बेटा अब सहमा–सहमा सा रहने लगा। घर हमें काटने को दौड़ता मगर कुछ तो करना था। यूँ हाथ में हाथ धर कर बैठने से कुछ हासिल नहीं होने वाला था। मन में एक निश्चय ने जन्म ले लिया। इसे मेरा प्रतिशोध भी कह सकते हैं। मेरी बेटी को मौत के मुंह में धकेलने वाले को सलाखों के पीछे भेजकर ही दम लूंगी। यह इतना आसान नहीं था। मगर मैंने सोच लिया था।

कहाँ और कैसे शुरू करूं, इसके लिए पहले पृथा के कुछ दोस्तों से पूछताछ की। किसी को कुछ मालूम ही नहीं था। स्कूल प्रशासन, शिक्षक और विद्यार्थी ने पृथा के साथ क्या हुआ इस बात की अनभिज्ञता जाहिर कर दी। पृथा के रूममेट ने बताया उस दिन सब खूब मौज मस्ती कर सो गये थे। दूसरे दिन जब वो लोग उठे तो देखा फर्श पर खून बिखरा पड़ा था। अपने बिस्तर पर पृथा अचेत पड़ी थी। उसके दायें हाथ की कलाई पर गहरा कट लगा था। वह सब भागकर टीचर्स के पास गये। सब कुछ बताया। आनन फानन में पृथा को अस्पताल ले जाया गया जहाँ उसे मृत घोषित किया गया। चूंकि यह आत्महत्या का मामला था तो

डाक्टर ने पुलिस को बुला लिया गया। प्रिंसिपल ने स्कूल की बदनामी न हो इसलिए मामले को रफा–दफा करवा दिया। उन्हें नहीं पता पृथा ने ऐसा क्यों किया। पृथा की वजह से उनकी ट्रिप में खलल पड़ गयी थी। इस बात से भी कुछ विद्यार्थी खफा थे। टीचर्स ने साफ–साफ कह दिया। पृथा से उन्हें इस तरह की उम्मीद नहीं थी। पृथा के साथ क्या हुआ इस सवाल का जवाब या तो पृथा स्वयं दे सकती थी या ईश्वर.....

पृथा के कमरे में छानबीन की। उसकी स्टडी बुक और साहित्यक किताबों के अलावा कुछ नहीं मिला था। पृथा का मोबाइल चैक किया, व्हाट्सअप पर कुछ खास मिला नहीं था, कुछ स्कूल ग्रुप और कुछ दोस्तों की चैटिंग के अलावा कुछ नहीं था। फेसबुक पर भी वहीं स्कूल फ्रेंड और कुछ टीचर्स ही फ्रेंड लिस्ट में थे। इन्स्टाग्राम हैंडल पर चेक किया वहां भी कुछ नजर नहीं आया। कहीं कुछ ऐसा नहीं था जिस पर शक किया जा सके। पृथा की इमोशनल ब्लैकमेलिंग हमें इतनी भारी पड़ेगी, कभी सोचा नहीं था।

इन्स्टाग्राम हैंडल पर सहसा मेरी नजर एक कवि पर पड़ी, मैंने देखा उसकी हर पोस्ट पर पृथा ने दिल की इमोजी का स्टीकर दिया हुआ है, वह उसकी पोस्ट पर है। उसके फोटो पर नीले दिल का निशान लगाया हुआ है रजतविहान का पूरा अकाउंट छान मारा, पृथा उसकी हर पोस्ट पर है। उसकी तारीफ कर रही हैं, फिर कुछ चैट मिली जिसमें पृथा की ओर से मिलने का प्रस्ताव दिया गया। पृथा उससे अपनी जोधपुर ट्रिप का जिक्र भी किया और उससे वहीं मिलने का वादा भी किया। रजतविहान ने उसे मिलने के लिए घर का पता भी दिया और कहा कि पृथा तुम्हारे लिये सरप्राइज है।

ठीक हैं मैं वह सरप्राइज लेने आ रही हूँ। पापा ने परमिशन दे दी है।

वाह, जल्दी आना पृथा। तुमसे मिलने का बहुत मन हो रहा है। तुम दिखती कैसी होगी, मैं सोचकर ही रोमांचित हो रहा हूँ।

बस थोड़ा इंतजार डियर। मैं जोधपुर आकर आपसे बात करूंगी।

मेरे मन में शंका हुई, हो न हो ये शख्स ही मेरी बेटी के मौत का जिम्मेदार है। बेटे को माँ के घर छोड़कर मैंने जोधपुर की राह पकड़ी। रजतविहान से मिली। उसने बताया कि वह पृथा से मिला था। सिर्फ इस नाते से कि वह मेरी फैन थी। हमने कुछ देर अपनी कविताओं की चर्चा की और कुछ इधर–उधर की बातें की। फिर वह मेरा ऑटोग्राफ लेकर चली गयी। बात खत्म हो गयी। उसे पृथा की मौत के बारे में कुछ पता नहीं था। पृथा द्वारा आत्महत्या करने की बात से उसे बेहद अफसोस हुआ।

रजतविहान से पूछताछ करने पर कुछ हाथ नहीं लगा तब मै निराश होकर वापस लौटने लगी। हे ईश्वर अब तू ही कोई मार्ग दिखा।

रजतविहान के घर के गेट से जब मैं निकल रही थी तब वहां के सिक्यूरिटी गार्ड ने कहा– मैडम आप दोबारा यहाँ मत आना। यह बड़े लोग हैं। इनके दिन उजले और रातें काली है। आपकी बेटी के साथ यहाँ जो कुछ भी घटित हुआ हैं उसे भूल जाइये। आप इनसे बदला नहीं ले सकती, पुलिस वकील नेता सब इनकी मुट्ठी में कैद हैं।

क्या हुआ था पृथा के साथ.....मैंने पलटकर उससे पूछा।

आप लौट जाइये फिर कभी न आना–सिक्यूरिटी ने अपनी बात को फिर से दोहराया।

क्या हुआ था मेरी बेटी के साथ–मैंने सख्ती से पूछा।

मेरी नौकरी चली जायेगी। आप यहाँ से जाये मैडम.... । मैं कहाँ फंस गया। आप प्लीज चली जायें.....सिक्यूरिटी ने दोनों हाथ जोड़ दिये।

मैंने उसे आश्वासन दिया कि मैं तुम्हारे बारे में कुछ नहीं कहूंगी किसी को भी कुछ नहीं बताऊंगी, मुझे मेरी बेटी के बारे में सच जानना है। बस.....

रजतविहान अमीर माता–पिता का इकलौता बेटा है वह बहुत फेमस कवि है। अच्छा लिखता है। उसकी फैन फोलोइंग भी बहुत ज्यादा है। पृथा उनमे से एक थी। वह अक्सर रजतविहान से बातचीत किया करती थी। बातचीत में उसने अपना दिल रजतविहान को दे दिया। उन दोनों में एक अलग ही रिश्ता कायम हो गया। जब पृथा ने अपनी जोधपुर ट्रिप के बारे में बतया तो रजत ने उसे मिलने का न्योता दे दिया। कहा तुम्हारे लिए यहाँ सरप्राइज है।

पृथा ने क्या सोचकर किसी को भी इस मुलाकात के बारे में नहीं बताया, यह एक अनसुलझा सवाल है। यहाँ तक कि उसने अपने केयर टेकर और टीचर्स से परमिशन भी क्यों

नहीं ली। वह बिना किसी को बताये सीधे रजत से मिलने चली गयी। इस मुलाकात का इंतजार तो रजत को भी था। उसके इरादे नेक नहीं थे। इसलिए उसने पहले ही तैयारी कर ली थी अपने स्टाफ को छुट्टी दे दी थी। बस एक सिक्यूरिटी गार्ड और एक खाना बनाने वाली नौकरानी को छोड़कर। परिवार वाले पहले से एक टूर पर बाहर थे। रजत ने कुछ नशीली गोलियां पहले से मंगवा कर रख ली थी। जब पृथा आई तो उसने चुपके से उसकी चाय में वह गोलियां मिला दीं। रजत ने उस समय पृथा के साथ रेप किया। पृथा खूब रोई चिल्लाई, हाथ पांव मारे मगर असफल रही। रजत ने अपना कमीनापन दिखा दिया था। यही उसका सरप्राइज था। उसने पृथा को धमकी दी कि यदि उसने किसी को कुछ बताया तो वह उसे बर्बाद कर देगा। उसने अपने घर में काम करने वाले मुलाजिमों जिनको इस घटना की भनक लग चुकी थी और बाकी के सदस्यों को सख्त हिदायत दी कि कोई भी इस घटना का जिक्र किसी से न करे।

सिक्यूरिटी गार्ड ने बताया कि उन्होंने पृथा के चीखने चिल्लाने की आवाजें सुनी थीं उसने रजत से छोड़ देने की बहुत मिन्नत की मगर वह टस से मस नहीं हुआ। हम चाहकर भी आपकी बेटी को नहीं बचा पाये। रेप के बाद पृथा को टैक्सी मैंने ही लाकर दी। टेक्सी में बैठते वक्त पृथा बेसुध सी थी।

लाचार और बेवस पृथा इस हादसे को सहन नहीं कर पायी और उसने कानपुर लौटने की बजाय अपने हाथ की नस काट लेना उचित समझा और सब खत्म हो गया। पृथा तुम जिस बात को हमसे छिपा रही थी। वह अब सामने आ चुकी है। ऐसा क्यों किया पृथा मेरी बिटिया.....मैं और तुम तो सहेलियों की तरह रहते थे। तुमने एक बार तो हमसे कहा होता। हर दर्द की दवा थी। वक्त भी हर जख्म को भर देता है।

पृथा के साथ जो ज्यादती हुई उसको सोचकर ही मेरा रोम–रोम कांप उठा। मेरी फूल सी बच्ची के साथ ऐसा अमानवीय कृत्य.....। मैंने इस रजतविहान के विरुद्ध लड़ने की ठान ली थी। भले ही यह जंग हार जाऊं मगर मन में कभी अफसोस नहीं होगा कि मैंने अपनी बेटी के लिए एक आवाज नहीं उठाई।

मैंने कोर्ट में केस फाइल किया। जोधपुर के सेशन कोर्ट में कभी सुनवाई पड़ती। कभी नहीं होती, कभी रजत का वकील नहीं होता तो कभी मेरे वकील को काम आ जाता। कभी जज छुट्टी पर होते तो कभी किसी बड़े गुनहगार की सुनवाई के चक्कर में बाकी सुनवाई रद्द हो जाती। कानून व्यवस्था भी लचर है। रजतविहान का केस लड़ने वाली कोई महिला वकील है उसने मेरे वकील से कहा कि मैं अपना केस वापस ले लूं नहीं तो वह पृथा की कोर्ट में इतनी धज्जियां उड़ाएगी कि मुझे ता उम्र अफसोस रहेगा कि मैंने यह केस किया क्यों?

मैंने अपने वकील से कहा – जो होगा उसका अंजाम मुझे पता है। मैं मां हूं अपनी बेटी को तार–तार होते नहीं देख सकती। इसलिए मैं कोर्ट में कभी नहीं आऊंगी। तुम यह केस लड़ों, पैसों की चिंता मत करना।

मैम हमारा केस कमजोर है।

हां, फिर भी पूरे जुनून से लड़ो, जीत हार उसके ऊपर छोड़ दो। मैंने आसमां की ओर इशारा करते हुए कहा।

दोनों वकीलों ने खूब बहस की। रजत के वकीलों ने पृथा को चरित्रहीन साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। पृथा तो थी नहीं जो अपनी बेगुनाही का सुबूत देती। उसके बचे अवशेषों पर सच्चाई कब तक टिकती। आखिर हार मेरे हिस्से आयी। पृथा के दामन पर चरित्रहीनता का दाग लग गया। प्यार और लगाव की बातें दोनों ओर से हुई मगर कलंक पृथा के हिस्से आया। हमारा समाज और उसकी संरचना इसी प्रकार की है कि पुरुष आसानी से बचकर निकल जाता है और स्त्री अग्नि परीक्षा देकर भी दोषी ठहरायी जाती है।

एक गलती पृथा ने की जो बिना सोचे–समझे स्वविवेक से रजतविहान से मिलने चली गयी जिसकी खबर उसने किसी को न लगने दी। क्या सोचा था उसने कि कविताओं में प्रेम करने वाला हकीकत में प्रेम पुजारी होगा। यहां सबके चेहरे पर नकाब है जिसे युवा पीढ़ी पहचान नहीं पाती.....हश्र पृथा जैसा ही होता है। दूसरी गलती हम माता–पिता की है जो आंख मूंद कर अपने बच्चों पर भरोसा करते हैं। हमें लगता है हमारे बच्चे जो कर रहे हैं वह ठीक कर रहे हैं। कभी हम उनके सोशल मीडिया पर झांक कर भी नहीं देखते हैं, उनके टाइम लाइन पर चल क्या रहा है। ◆

पता : 265/24 सेक्टर–26, प्रताप नगर, सांगानेर, जयपुर–302033
मो. : 9571220372

जमीन ढूँढवा दीजिए साहेब....!

❑ रजनी शर्मा बस्तरिया

''क्या नाम है ?''

खोलिन बाई।

''यहाँ कैसे?''

खोजन के वास्ते।

''क्या खोजने?''

अँचरा से आँसू पोंछते वह कहने लगी–''जमीन''

''कितनी उम्र है तुम्हारी–?''

''तीन कम सत्तर।''

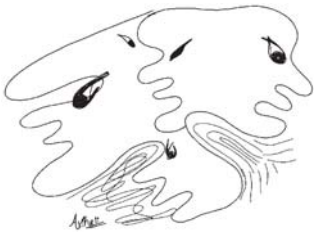

''वाह, याददाश्त तो दुरुस्त है!''

''स्थान–मोवा।''

वार्ड–'भीमराव अम्बेडकर वार्ड।'

''कागज दिखाओ!''

मुड़े–तुड़े कागज को निकाल कर वह दिखाने लगी– 'खसरा नंबर 475/71'

''चेक करो!''

''जी सर! जमीन का खसरा नंबर तो डिजिटली दिख रहा है। इसमें इनका नाम भी है।''

''फिर समस्या क्या है ?''

''जमीन नी मिलथे साहेब।'' (जमीन नहीं मिल रही है साहेब।)

''कहाँ पर खरीदी थी जमीन?''

''फूल–चऊक मेरा'' (फूल चौक में।)

'खोजिन बाई' को सब याद आने लगा....

बस्तर के पनारा जाति की वह थी। 'सिर्फ फूलों की बातें और फूलों का ही काम।' जगदलपुर का वह बाजार जहाँ ईमली पेड़ के नीचे वह अपना सामान रख कर बैठती थी।

टोकनियों में रखे जूही, मालती, मोंगरे की वेणिंयाँ। उसके पुष्ट शरीर में कसी बरकी

(साड़ी), काले केशों के बीच 'तीरथगढ़ जलप्रपात' सी निकली सीधी माँग। नाक के दोनों ओर फुल्ली का लश्कारा। हाथों में ककनी, कंगन, घुटनों के ऊपर साड़ी, मोंगरी मछलियों सी चिकनी पिंडलियाँ, टखनों से घुटने तक पाँव में गोदने के टप्पे।

पसरी हुई टोकरी में, पेड़ों के रेशों से बने धागों में वह बिना देखे ही फूलों को पिरोती जा रही थी। बीच–बीच में वेणियों में पत्तियों को भी पिरोती जा रही थी।

रथ–यात्रा के पहले से ही फूलों की मांग, ज्यादा रहती है। अहा, ये पनारिनों के हाथ, फूलों के मन को भी कितने अच्छे से समझतीं हैं। जब शाखों पर पत्तियाँ और फूलों का साथ नहीं छूटता तो फिर इन वेणियों में उन फूलों और पत्तियों को अलग–अलग रखने का पाप वह क्यूँ करे ? बाबा से विरासत में ही यह कला मिली थी।

हर मौके, हर शख्स की खासियत के अनुसार सटीक वेणी बनाने मैं उसे महारत हासिल थी।

सुतवां देह के लिए नाजुक वेणी, भारी शरीर के लिए गज वेणी। देवता–धामी के लिए लाल मदार की वेणी तो देवी के छत्र पर चढ़ाने के लिए फूलों से भी हल्की मालती की वेणी। महादेव को चढ़ाने के लिए धतूरे के फूल तो दुर्गा देवी को चढ़ाने के लिए नरमुण्डों सी मदार की माला।

आंगा देव, खोटला देव में अर्पित किए जाने के लिए महुआ के फूलों की वेणी वह मांग के अनुसार चुटकियों में गूँथ देती थी। पूरे बाजार में उसकी तूती बोलती थी। जब 'खोजिन पनारिन' अपने फूलों की टोकरी लिए बाजार में दाखिल होती तो पूरे बाजार में सन्नाटा सा पसर जाता था।

'खोजिन पनारिन' नाम ऐसे ही तो उसके अभिभावकों ने नहीं रखा होगा ना। खोज–खोज कर एक से बढ़कर एक दुर्लभ फूल चुनना और इनके साथ पत्तियों को मिलाकर रंगों का ऐसा संयोजन वह करती कि इंद्रधनुष के सारे रंग फीके पड़ जाएं। वहां फूलों की रंगरेजन थी। चाहे रथयात्रा हो, दंतेश्वरी माँ की छतरी पर फूल चढ़ाना हो, खोजिन पनारिन की वेणियों की माँग हमेशा बनी रहती। वह फूलों को इतनी नरमाई से गूंथती कि मजाल है कि एक भी पराग का कण झड़ जाये!

लाल रंग के पलाश, जिसू के फूल सच में ब्रम्हवृक्ष ही पर ही खिलते थे। बस्तर की जीजीविषा का रुधिर इनकी जड़ों से लेकर शीर्ष तक बहता था। हरसिंगार के साथ इनकी जुगल बंदी, टेसू के साथ दोने के हरे पत्तों की वेणी ग्राहक को देकर वह हिदायत दे कर कहती–

''नवप्रसूता को पहना देना! नजर, छूत से बची रहेगी।''

विवाह योग्य लेकी (लड़की) को महुआ के फूल देती। माँ दंतेश्वरी के लिए लाल, तो माता शीतला के लिए सफेद हरसिंगार, शिव के लिए नीली अपराजिता, और न जाने क्या–क्या क्या?

राजमहल के ठीक सामने 'जगदलपुर' का वह बाजार। दूर–दूर से लोग बस्तर दशहरा देखने आते थे। मोहरी बाजा बजाने से पहले भी लोग खोजिन से वेणी लेकर अपने वाद्य यंत्रों पर लपेटते ताकि यही खुशबू वादक की साँसों में घुल कर उनके फेफड़ों तक पहुँच जायें। फिर इनकी वापसी मोहरी की डोली में होती। मोहरी बाजा के छिद्रों के कहारों पर चढ़कर सुरों की चुनर ओढ़ कर जब ये बाहर आती तब राजमहल के पूरे परिसर में बस्तरिया स्वर लहरियाँ गूँज उठतीं। अचानक एक अपरीचित सी आवाज ने पूछा– ''कितनी वेणियाँ हैं?''

''कितनी चाहिए, उसने बिना देखे ही प्रश्न दाग दिया?''

उसने हाथों से छू कर वेणियों को देखा। खोजिन की आँखों में नाखुशी दिखी। यह कोई कबाड़ी की दुकान है क्या ? फूलों की दुकान है जरा सलीके से... वह बुदबुदाई–

''कौन बीती घरुआस?'' कौन सा लोगे?

खोजिन घूर कर अजनबी की आँखों में विश्वसनीयता की खोज कर रही थी।

''मैं हर साल यहाँ आता हूँ!''

''काय काजे?'' (क्यूँ?)

''माँ दंतेश्वरी के मंदिर में हार चढ़ाने।''

लगता था सामने वाले के पास में फूलों की पहचान का अच्छा–खासा तजुर्बा था वर्ना बाजार में तो कितनी और पनारिनें, फूल बेचने वालियां हैं।

बस्तर दशहरा के अंतिम नौ दिनों में वह उससे ही वेणी लेने आता रहा।

वह कहने लगा–

''हमारे रायपुर में ऐसे फूल नहीं मिलते, जो यहाँ मिलते हैं।''

खोजिन बोली– ''सत्ते आय। ऐताय मिरूआय किसीम–किसीम चो। काय रोस–रोसा हुनचो गंध।'')

(यहाँ बहुत सारी किस्में मिलती हैं और इन फूलों की सुगंध के क्या कहने!)

अगले दिन जब वह आया तो एक टोकरी भी अपने साथ लाया था। खोजिन के पास खड़े होकर उसने कहा– ''एक चीज लाया हूँ।''

''क्या?''

क्यों, पूछने का साहस वह नहीं कर सकी क्योंकि वह उसकी उपस्थिति, उससे फूलों की बातों की अभ्यस्त हो चली थी।

उसने कहा– ''दिखाओ क्या लाये हो?''

छोटी सी सुंदर टोकरी में शहरिया, चँपई, तोरई पीले रंग की गेंदे के फूल ।

''अहा! बहुत सुंदर हैं।''

''तुम इसकी भी माला बना लेना।''

बात फूलों की हो रही है थी तो वह इनकार नहीं कर पाई।

वेणियों की अदला–बदली में मन की भी अदला–बदली होने लगी। भाव नेह के सूत में गूंथे जाने लगे।

रायपुर की वह जगह जिसका नाम ही था 'फूल चौक'। बहुत सी यादों की खुशबुओं को अपनी अंटी में गठिआये यह चौक जाने कितनी कहानियों, किस्सों, अनकही बातों का ठीहा रहा था। इसी के पास पुराने दो तले का घर। खिड़कियों का छज्जा सड़क की ओर खुलता था। इस चौक में बसे हर घर में फूलों की टोकरियाँ, फूलों का ही काम होता था। खुशबूओं की टेर से ही दुकानें खुलतीं। खुशबुओं का सेहरा हर दुकान के चेहरे पर सजा होता।

उसी फूलों की बातें करने वाले के साथ, खुशबूओं की गवाही में उन दोनों का विवाह हुआ।

उसी चौक के भीतर दो कमरे और दस कमरों से बड़ी–बाड़ी। इसी घर में ब्याह कर खोजिन पनारिन आई थी। ब्याह के बाद खोजिन दिन भर वेणियाँ बनाती और गवली (पति) टपरी नुमा दुकान में बैठता। बाड़ी में फूलों की क्यारियाँ बढ़ती गईं। नये फूलों से घर महकने लगा पर उसकी गोद हरी नहीं हुई। सारे देवी–देवताओं पर फूलों की वेणियां अर्पित की पर कोख में मातृत्व कि नन्हीं कली नहीं खिली।

खोजिन अपनी क्यारियों की ही परिवरिश करती। बस्तर के दूर–दूर के कोनों से लाये गये नायाब फूलों के पौधों को रोपती जाती पर गवली की आँखों में जो सूनापन ठहर गया था, उसका क्या?

उसके फूलों की वेणी की ख्याति अब फैलने लगी थी। एक बड़े से बंगले में रोज फूल, पहुँचाने का काम खोजिन को मिला था।

गवली ने कहा– ''मैं अब ज्यादा चल फिर नहीं पाता हूँ, तू ही पहुँचा दिया कर। इसी बहाने तेरा घूमना हो जायेगा और मन भी बहल जायेगा।''

वह रोज सुबह ताजे फूलों की वेणियां लिए, अपने पनारिन तेवर, कर्तव्यनिष्ठा के जेवर के साथ बंगले में पहुँचती। बंगले के गेट के भीतर कोने में छोटा सा मंदिर वहाँ पर झाड़–बुहार कर फूल–वेणी रख आती। अगले दिन सुबह सूखे फूलों को वापस ले आती।

वह मन ही मन सोचती–

इतना बड़ा बंगला पर ना कोई ईचका दिखता ना कोई पिचका (बाल–बच्चे)। बस सामने की दालान में ,चाय की प्याली, टेबल और अखबार ही किसी एक व्यक्ति की उपस्थिति दर्ज करवाती थीं। जाने कितने बरिस हो गयें, बिला–नागा वह फूलों की टोकरी फूल चौक से उस बंगले तक पहुँचाती रही।

कल रात से बहुत तेज बारिश हो रही थी। वह चिंतित थी कि जाने गवली कैसे, कब घर आयेगा? खोजिन राह ही देख रही थी कि जो आदमी बड़ी मुश्किल से गवली की निढाल काया लाते दिखे। वह दौड़ पड़ी...घर की डेहरी के भीतर आते ही हृदयाघात से उसके प्राण पखेरू उड़ चले थे। टपरीनुमा दुकान के गल्ले में कुछ रुपयों के साथ एक कागज का पुर्जा भी था।

खोजिन रो पड़ी.. जब गवली ही नहीं तो वो वह इन कागजों का क्या करें? वह जमीन उसके नाम कर गया था, ऐसा कागज कह रहे थे ! पर उसको अकेला छोड़ गया, क्यूँ गया, यह नहीं लिखा था ।

साठ बरीस की उमर हो गई थी अब खोजिन की। वह घर संभाले, टपरी में बैठे कि बंगले तक टोकरी पहुँचाये। अकेली जान वह क्या–क्या करे? हालांकि उसकी टपरी, उसका घर बाड़ी सब आपस में जुड़े हुए थे।

बाजू वाले 'लफ्फन मियां 'की नीयत कई दिनों से टपरी पर थी। गवली को मरे अभी साल भी नहीं बीता था कि एक दिन उसकी टपरी पर हरी चुनरें, चमचम चादरें टंगी हुई दिखीं। यह देखकर वह बदहवास दौड़ पड़ी... यह क्या? मेंहदी लगी दाढ़ी वाले लफ्फन ने सूरमा अँजी आंखों से उसे तरेरा। लाठी टेकती वह रो पड़ी...

पनीली आँखों से वह पूछने लगी–

''मेरी दुकान में तुम कैसे?'' उसकी आवाज भरभरा गई। टांगें काँपनें लगीं। इतना बड़ा विश्वासघात। फूलों का सेहरा बनाने वाले ने उसके साथ इतना बड़ा छल किया? गवली के जाते ही उसकी नीयत बदल गई।

वह कहने लगा–

''अरे , कैसी बातें करती हो?''

वह घाघ नजरों और लंपटिया तेवर से बोला–

''यह दुकान अब मेरी है।''

''क्यूँ झूठ बोलते हो, तुम्हे इन फूलों की कसम। मेरे पास कागजात हैं।''

''कागजात तो मेरे पास भी हैं, यह देखो''– वह धौंस जमा कर कहने लगा।

खोजिन की फूलों वाली मति को कोई और बात समझ में आये तब ना! वह ठगी सी सड़सठ की उम्र में कागज लेकर पंचायत आफिस के बार–बार चक्कर लगाती। चपरासी भी पैसे ऐंठ चुका था। गवली का चेहरा याद कर वह रोज हिम्मत जुटाती। आखिर वह पनारिन थी। फूलों के पनपने की जगह को, उसकी बाड़ी ही उससे छीन ली जाएगी तो इन सबके बिना फिर उसका क्या जीना? सुबकते हुए अपनी आँखों को पोछते, आवेदन पत्र जमा करती, अरजी देते–देते, एक आफिस से दूसरे आफिस तक अंतहीन चक्करें लगा–लगा कर वह थक चुकी थी। आखिरकार चपरासी को दया आ गई। उसने कागज कोर्ट में जमा करवा दिया था। इस लालच से कि जमीन वापस मिले तो इस बुढ़िया से वह कुछ और पैसे ऐंठ ही लेगा।

कलेक्टरेट ऑफिस में अर्जी लेकर थरथराती टाँगों से साथ जब वह पहुंची।

आफिसर– ''क्या समस्या है?''

''साहेब– जमीन गंवा गे हे पटवारी बोलथे।''

(''साहेब, जमीन गुम गई है ऐसा पटवारी बोलता है।'')

(कहीं गुम सी कोई खुशबू आफिसर के जेहन में लौट रही थी।)

''क्या?''

''हव साहेब, थोर किन ढूँढ़वा देतेव!''

(''जरा सा ढूँढवा दीजिए!'')

आफिसर के स्नायुतंत्र कुछ ढूँढने लगे, वही तेवर वही खुशबू ...

पटवारी को तलब किया गया।

''आप रिकॉर्ड चेक कीजिए!''

''जी सर'' , पटवारी ने काँपते हुए कहा।

''सर खोजिन बाई के नाम से 475/71, 1400 वर्गफीट वार्ड क्रमांक 27, भीमराव अंबेडकर नगर दर्ज है।''

''रजिस्ट्री कब हुई?''

''2008 में।''

''नामांतरण?''

''वह भी उसी वर्ष।''

वो सारे वर्ष .....बंगले के सामने टोकनी वाले आफिसर को याद आने लगे जब तुड़े–मुड़े कागजों के साथ फूलों की वेणी भी आगे बढ़ाई गई। मानो किसी अराध्य के सामने प्रार्थना करते समय रखी गई यह सात्विक भेंट हो, नमनों में पगा प्रणाम हो।

आफिसर बिना नजरें उठाये पूछने लगे–

''उस क्षेत्र का पटवारी कौन है? पोर्टल खोलिए, चेक कीजिए।''

''सर, इसमें तो किसी और का नाम दर्ज है!''

खोजिन बीच में बोल पड़ी– ''कैसे दूसरे का नाम होगा साहेब?''

पटवारी– ''जी सर, ये कई बार शिकायत कर चुकी हैं, अर्जी भी दे चुकीं हैं।''

''सही– ढंग से चेक किया है ना।''

''जी सर, किया है, भुंईया साफ्टवेयर में।''

खोजिन बाई भोकवा गई .....वह बोल पड़ी–

''नाम है भुंईया पोर्टल और भुंई (जमीन) ही नहीं खोज पा रहे हैं। दूसरे की जमीन भी हड़प रहे हैं।''

पटवारी दबे स्वर में झल्लाते हुए कहने लगा– ''सर जो काम हम मेनुअली पाँच मिनट में कर सकते हैं लोग उसके लिए भी एस.डी.एम. के पास नब्बे दिनों तक चक्कर काट रहे हैं।''

''और हम?''

खोजिन कहने लगी– ''नौ साल तो हमको भी हो गए साहेब चक्कर काटते।''

वह सिसक पड़ी।

पटवारी– ''इस भुंईया पोर्टल में न तो हम नया खसरा जोड़ सकते हैं और न ही कोई खसरा डिलीट कर सकते हैं।''

खोजिन– 'त तुमही मन त नाप–जोख करथव।''

(आप लोग ही तो नाप–जोख करते हैं।)

''अम्मा, हाथ जोड़ रहा हूँ। शांत रहिए ना! मैं बात कर रहा हूँ ना।'' पटवारी गिड़गिड़ाया।

पटवारी आगे कहने लगा– ''जब रजिस्ट्रेशन और नामांतरण होता है तो बाकायदा ईश्तहार छपता है ना। सर, पहले यह काम तहसीलदार का होता था पर अब वो भी हमारे मत्थे मढ़ दिया गया है। हमारा डिजिटल साइन भी लिया जाता है।''

खोजिन फिर बीच में बोल पड़ी–

''बेरी–बेरी तो मोरो अँगूठा लगवाथें।''

(बार–बार मेरा भी अँगूठा लगवाया गया है।)

''ओफ्फो– अम्मा, मोर महतारी जमीन ढूँढना है कि नहीं ?''

''हव बेटा।''

''तोर बिहाव होगे हावे का?''

(तुम्हारी शादी हो गई है क्या?)

पटवारी ने खीज कर कहा– ''लड़की ढूंढने ही तो आया हूँ। आपकी जमीन बाद में ढूँढूंगा।''

''अभी जमीन किसके नाम या दिखाया जा रहा है?'

'लफ्फन मियां'।

''इनका पता– ?''

फूल चौक...

फूलों का सुवास आफिसर के जेहन में तैरने लगा।

''जगह–?''

मोवा।

अहा! मेवा, खोवे की दुकान। यहीं तो उसकी गाड़ी अक्सर रुका करती थी। कागज के साथ दिए गये फूलों की वेणी, उसकी सुगंध से आफिसर के स्नायुतंत्र झनझना उठे।

बिना पलटे वो बोले–

''इनकी जमीन मिल गई है।''

स्थान– रायपुर

चौक– फूल चौक

नाम– खोजिन पनारिन

बेवा– गवली फूल वाला

खसरा नंबर – 475/71

वर्गफीट– 1400 स्क्वेयर

''यह जानकारी पोर्टल में एंट्री कर इनको पावती दी जाये।''

आफिसर वेणी लेकर वापस जाने लगे। फूलों की टोकरी, वेणियों की बनावट, बिला– नागा बंगले में मंदिर में टोकरी रख जाना। बस इतना ही काफी है.... जमीन ढूंढने के लिए...

फूलों की बातें, महसूस करते वो आगे बढ़ गए। खुशबुओं का रेला उनका पीछा करने लगा पर वे नहीं पलटे... कभी नहीं....ना हीं अपनी जबान से, ना अपने फैसले से,

जमीन मिल गई..... ◆

पता : 116, कुंज, देशबंधु प्रेस के सामने, नगर निगम कॉलोनी, रायपुर छत्तीसगढ़–492001

मो. : 9301836811

भगवान

❑ मंजरी तिवारी

नंदिता और अर्चना बहनें थीं मगर सौतेली। नंदिता की माँ की मृत्यु के बाद पिता ने दूसरी शादी कर ली। नाम के अनुरूप ही सौतेली माँ का व्यवहार सौतेला ही था नंदिता के लिए अलग, अर्चना के लिए अलग। दोनों बच्चों में बहुत भेद करती थीं। यहाँ तक कि नंदिता को स्कूल के लिए टिफिन भी नहीं देती थी। नंदिता को इन सब बातों से कोई शिकायत भी नहीं थी। घर का काम और पढ़ाई बस वह अपनी दुनिया में खुश रहती।

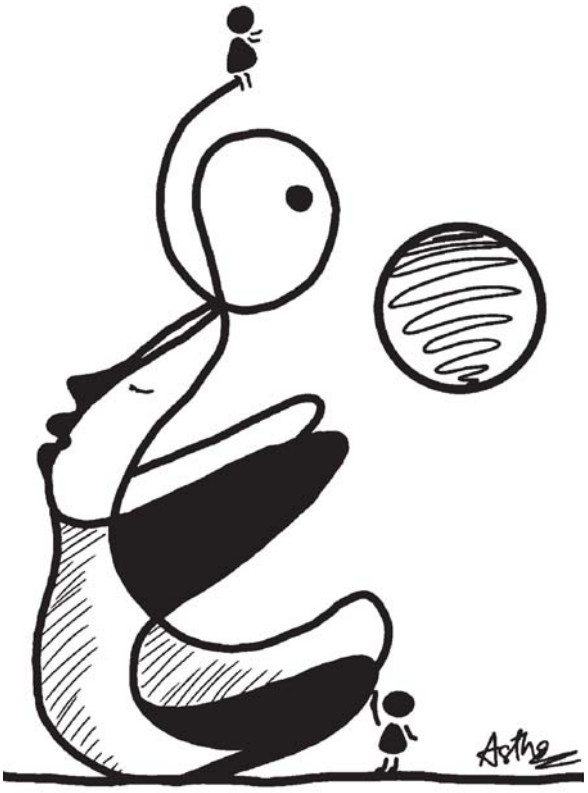

पिता नौकरी के लिए बाहर रहते थे। जब घर आते तो सौतेली माँ नंदिता के साथ अच्छा व्यहार करतीं थी और उनके जाते ही फिर से पुराना रवैया। नंदिता पढ़ने में बहुत अच्छी थी पर उसकी सौतेली माँ को यह बात भी नागवार गुजरती क्योंकि उनकी बेट अर्चना पढ़ने में अच्छी नहीं थी इसलिए नंदिता के 12जी पास करते ही उसकी सौतेली माँ ने पिता से कहा 'सुनो ज्यादा पढ़ाने–लिखाने पर लड़के अच्छे नहीं मिलते। दहेज भी देना होता है हम कहां से इतने पैसे लायेंगे ? मेरे पास एक रिश्ता है। लड़का अच्छा है पर गरीब है। दान दहेज का भी लफड़ा नहीं। नंदिता की शादी कर देते हैं। नंदिता के पिता भी राजी हो गये और नंदिता ने इसे किस्मत मानकर चुप–चाप शादी कर ली।

नंदिता का पति बहुत अच्छा इंसान था। वह जानता था कि नंदिता आगे पढ़ना चाहती थी पर उसकी शादी हो गयी। उसने नंदिता से कहा 'तुम जो करना चाहती हो करो, मैं तुम्हारे साथ हूँ। मैं

हर तरह से तुम्हारी सहायता करूंगा 'नहीं मुझे नहीं पढ़ना' नंदिता ने कहा। 'देखो मैं तो बहुत ज्यादा पढ़ा नहीं हूँ पर पढ़ाई की कीमत समझता हूँ, जो मुझे न मिल सका, वह तुम करो। मुझे खुशी होगी।'' ठीक है अगर आप चाहते हैं तो मैं पढूंगी'। उसके पति किशोर ने उसका ग्रेजुएशन पूरा कराया बाद में सिविल सर्विसेज की तैयारी करवाई। रात–दिन एक कर दिया पत्नी को आगे बढ़ाने में और नंदिता की मेहनत रंग लायी और नंदिता का चयन सिविल सेवा की परीक्षा में हो गया और डीएम के रूप में उसकी नियुक्ति दूसरे शहर में हो गयी। काम की आपाधापी और नयी नौकरी के कारण वह घरवालों से ज्यादा बात नहीं कर पाती थी। उसके पति को भी अब लगने लगा कि वह नंदिता के लायक नहीं है। इसलिए वह नंदिता की जिन्दगी से दूर चला जायेगा। शहर ही छोड़ देगा पर यह सब करने से पहले वह एक बार नंदिता को देखना चाहता था इसलिए वह उस शहर गया जहां नंदिता की पोस्टिंग थी। काफी प्रयत्नों के बाद भी जब उसे नंदिता से मिलने में सफलता व मिली तो वह और भी मायूस हो गया।

एक दिन सूचना मिली कि डीएम साहिबा शहर में गरीबों को कम्बल बांटेगी। नियत समय पर वह भी मुँह ढक कर कम्बल लेने वाले स्थान पर चला गया। नियत समय पर नंदिता यानि डीएम साहिबा आती है और कम्बल वितरण का कार्य शुरू करती हैं। जब बारी किशोर की आती है तो पीछे वाले व्यक्ति के धक्का लगने के कारण वह नंदिता से टकरा जाता है और उसके मुँह से निकल पड़ता है 'माफ कीजिएगा मैडम, गलती हो गयी। 'नंदिता को आवाज जानी–पहचानी लगती है। वह किशोर से कहती है कि 'मुँह खोलो' किशोर ऐसा नहीं करना चाहता था पर डीएम साहिबा की बात मना भी कैसे कर सकता था तो उसे मुँह खोलना पड़ा। किशोर को देखते ही नंदिता आश्चर्य से बोली 'आप' फिर वह अपने जूनियर को कम्बल वितरण का कार्य करने को कह कर निकल जाती है और किशोर से पूछती है 'आपने बताया क्यों नहीं और यहाँ आप का फोन नंबर भी नहीं लग रहा और मेरा नंबर खो गया था जब आयी तभी दूसरा लिया इसलिए बात ही नहीं हो पायी।

'नंदिता अब मैं तुम्हारे लायक नहीं। बस आखिरी बार मिलने आया हूँ। 'आप' ऐसा क्यों कह रहे हैं आप मेरे साथ घर चलिये। वहाँ बात करते हैं और वह किशोर को साथ लेकर घर आती है। सबसे परिचय कराती है और किशोर से बोलती है 'आप मेरे पति हैं जो भी हूँ आप के कारण हूँ। आप ऐसा क्यों कह रहे है ''पर तुम्हारे घर के नौकर भी मुझसे ज्यादा पढ़े–लिखे होंगे। शायद ऐसा रिश्ता ठीक नहीं है। यह उनका काम है। हमारा रिश्ता है इतने सालों का। मेरे पद से उनका कोई लेना–देना नहीं और मैं तो आप ही का सपना पूरा कर रही हूँ ना ? तो ऐसी बात क्यों ?'' मुझे कोई परेशानी नहीं तो आप ऐसी बात न करिये। घर से सबको बुलायें अब हम यहीं साथ रहेंगे। 'नंदिता के इस व्यवहार को देखकर किशोर की आंखों में खुशी के आँसू निकल आये। भरे गले से बोले' तुम आज भी वैसी ही हो 'पर आप बदल गये 'नंदिता ने हँसते हुए मजाक किया 'पर अब मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। 'पहले मैंने आपकी बात मानी। अब आप मेरी मानें और सबको यहाँ बुलायें।

सबके आने के बाद नंदिता ने सबको शहर दिखाया शॉपिंग करायी और एक पार्टी का आयोजन कर अपने परिवार का परिचय सबसे करवाया। परिचय में उसने पति, सास–ससुर सबके लिए एक ही शब्द का सम्बोधन किया 'भगवान' मैं जो भी हूँ पर ये मेरे भगवान हैं और इनके कारण ही मैं आज यहाँ हूँ। 'नंदिता के सास–ससुर ने उसे ढेरों आशीर्वाद दिया और पार्टी में नंदिता की विनम्रता और सादगी की चर्चा हो रही थी। ◆

पता : डी 36/197, अगस्त कुंडा, वाराणसी (उ.प्र.)
मो. : 7523861978

ईश्वर से कुछ पूछना है

देव प्रकाश चौधरी

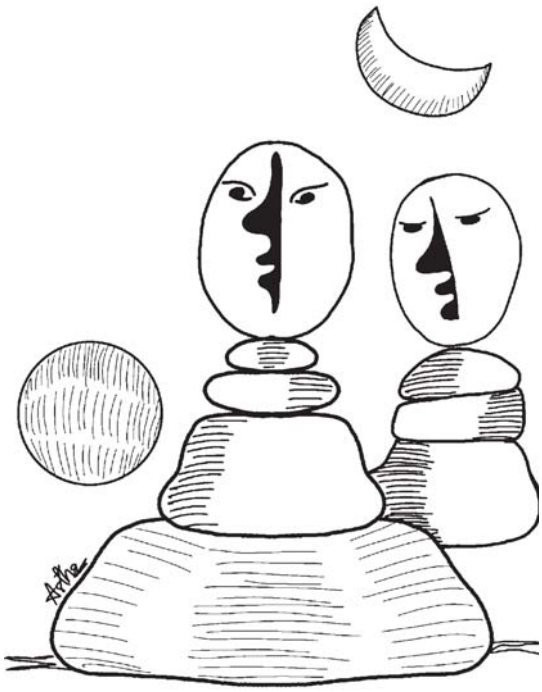

सड़कों पर बिछे हुए पत्ते
जो हर रोज गिर जाते हैं पेड़ों से
क्या आपस में करते हैं बातें?
कल जो पेड़ से गिरा था
वह आज के गिरे हुए को
क्या कह कर पुकारता होगा?
कैसे करता होगा स्वागत?
हमारे सिस्टम में तो
रिटायर्ड होने के ढेर सारे बही–खाते हैं
कुछ पेड़ों के पास मौसम होता है
कुछ पेड़ों के पत्ते बेमौसम भी गिरते हैं।
पता नहीं पेड़ पतझड़ को क्या कहते होंगे?
गिरते हुए पत्तों का मौसम
एक सवाल लेकर आता है
पत्तों के रिटायरमेंट की उम्र
कौन तय करता है?
और एक बात जानना
जरूरी है मेरे लिए
ईश्वर पत्तों में छिपी आत्माओं की
खोज–खबर रखते भी हैं, या नहीं?

जब आना

इस बार
जब भी आना
अपने साथ लेती आना
कोई लोकगीत
उसकी मिठास
उसके शब्दों की मासूमियत
ठीक उसी तरह
जैसे तुम लाती हो
मेरे लिए कोई ताबीज
या फिर किसी देवता का कोई नीर।
जब भी आना
लेती आना अड़हुल के फूल की महक
उसकी सिंदूरी रंग
उसका हर हाल में
खिले रहने की चाह
यह ज्यादा जरूरी है।
यहां गुलाबों के बीच से
गुजरती हवा
न सुगंध के साथ है
न शब्दों के साथ।

अटका हुआ पन्ना

जब उम्मीद नहीं होती
मौसम बदल जाता है
फिर इतिहास बगल से गुजरता है
और हमें कोई पदचाप सुनाई नहीं देती।
जब उम्मीद नहीं होती
मुस्कान बदल जाती है
फिर थकने लगते हैं रास्ते।
एक कोरा पन्ना उड़ता हुआ
अटक जाता है खजूर की डाली से
ठीक उसी वक्त आप
बंद कर लेते हैं अपनी आंखें
सूरज दूर चमक रहा होता है
और आपको बंद आंखों से
जो कुछ भी दिखाई पड़ता है
वह बस
लाल...और सिर्फ लाल।

◆

पता : एन–207, ऑफिसर सिटी–1, राज नगर एक्सटेंशन, गाजियाबाद (यू.पी.)–201017
मो. : 7838300890

कविता

ऋतु राज आया है

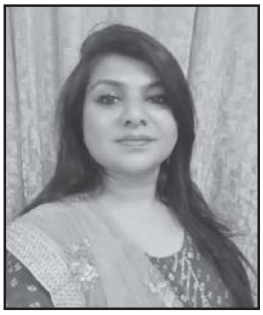

डॉ. रेनू सैनी

ऋतु राज आया है
मन में सावन लाया है।
पीली सरसों, पीले पुष्प
पीले वसन और पीले हस्त
हृदय में गुलाब खिल आया है।
हर ओर वसंत में
प्रेम, मिलन और खुशी
इन तत्वों का भाव छाया है।
तितली, भौरे और खगों ने
मुझे खुशी से हर्षाया है।
मधुर राग भी गाया है।
वसंत में अनुराग का
खिलता एक नया पुष्प
उस पर प्रीति की छाया से
होता हृदय मदमस्त।
मेरे मन मंदिर ने
प्रेम का अनमोल खजाना पाया है।
दरख्तों से झड़ते फूलों में
ऋतुराज आया है,
सबके लिए प्रेम रस लाया है।

◆

पता : 3, डीडीए फ्लैट्स, खिदकी गांव, मालवीय नगर,
नई दिल्ली–110017
मो. : 9971125858

परिंदे

निर्मला डोसी

लुप्त प्रायः प्रजाति के
परिंदे पाल रखे हैं उसने
अनोखे नाम धरे हैं
नीति न्याय खरी खुद्दार
चिड़िया हैं
आहत कृतज्ञ एहसास
तोते हैं

भरे घर में अकेली
खुरदरे हाथों से
सहलाती है उन्हें
परिंदे जानते हैं
उन्हें पालने वाले के हाथ
खुरदरे ही होंगे
सो आहत नहीं होते
कृतज्ञ अहसास की
सिहरन दौड़ जाती है उनमें

छुअन की इस सिहरन को
खूब समझती है वो
महीन सी इस हरकत ने ही तो
कृतज्ञ एहसास खरी खुद्दार
नीति न्याय जैसी लुप्तप्रायः
प्रजातियों को बचाए रखा है
अब तक
पर कब तक.....
पता नहीं....

सोने के हिरण

जानते थे राम
नहीं होते हिरण सोने के
फिर भी दौड़े चले गए
मायावी मारीच के पीछे
सीता के एक इशारे पर

उनकी एक भूल के कारण
कितना अघटित घटा
हरण हो गया सीता का
और सीता को वापस लाने में
भसम हो गई सोने की लंका

फिर भी नहीं रही
सीता अयोध्या में
राजसी सुख भोगने
समा गई धरती में

रावण के दस सिर छेदने वाले शूरवीर राम
नहीं मोड़ पाए धोबी की उठी एक अंगुली
उस एक अंगुली ने लिख दिया
शंका का शर्मनाक इतिहास
नारी जाति के खाते में

पराए पुरुष की लिप्सा से
जो नहीं डगमगाई लंका में जरा भी
रही अपने सत् पर अडिग अडोल
वही सीता.. अपने पुरुष के
एक अवांछित प्रश्न पर
हो गई धराशायी पल भर में
कदाचित जानती हो सीता
कि नहीं होगा कोई संदेह
राम के मन में भी
बस मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने का
लोभ संवरण नहीं कर पाएं होंगे राम

बेटियां

बहनें मिलती हैं
पिता के उस प्यारे घर में
बीता जहां सुनहरा बचपन
उसके साथ ही चुक गयी
सारी मस्तियां समूचा अल्लहड़पन

अब तो कानपुर नागपुर जयपुर से
आयी बेटियां मिलती हैं जब कभी
दिल्ली जंक्शन की तरह पिता के घर में
तो दिन में लगाए रखती हैं नकाबें
ताकि उनके सुलगते मन की चटकन का
अहसास तक न पा सके
असमय बूढ़ी हो गई मां और
अथक मेहनत से थक गए पिता

बेटियों के खिलखिलाते प्रसन्न मुख देख
जो भूल जाते हैं अपने दुःखड़े और
खींचते हैं राहत की लंबी सांस
कितना कुछ गवां कर के
जमा करके
जुटा करके
विदा किया था उन्हें

अब इस राहत की सांस पर तो
अधिकार बनता है उनका

इस छोटे से अधिकार पर
डाका नहीं डालना चाहतीं बेटियां
वे भरसक प्रयत्न करती हैं
कि झूठी ही सही पर यह खुशी
यह राहत की सांस
दोनों अवश्य ले सकें

जब बुझ जाती है सारी बत्तियां
दिनभर की थकी मांदी मां को
घेर लेती है नींद तब
उस अंधेरे बंद कमरे में
पास–पास सट कर सोयी बहनें
दिखाती है अपने–अपने घाव
कुछ सूखे..... कुछ ताजा
एक–दूसरी पर बोझ बढ़ातीं
खुद हो जाती हैं हल्की एकबारगी

सुख समृद्धि से छलक रही बहन
खोलती है उस श्री की पोल
अभाव व अपमान की तीखी धूप से झुलसी बहन
उधेड़ती है परतें संभ्रांत परदों की
पिता की गरीबी पर कसे व्यंग्य बाणों से
बिंधी बहन बताती है तथाकथित
पढ़े–लिखे प्रगतिशील कहलाने वाले
लोगों की धिनौनी हकीकत

पिता की चहेती बेटियों को
हर रोज सुनना सहना पड़ता है
बेवजह बुरा भला
तिलमिला कर रह जाती हैं
कुछ नहीं कर पाती

सच कहूं.....
कुछ करना ही नहीं चाहतीं
मां–बापू की छोटी सी खुशी पर
वे अपने सौ दुख वार सकती हैं

बेटियां कैसे भूल सकती हैं कि
वर्षों मां को नायलॉन की
दो बदरंग साड़ियों में देखा है
जिन्हें पहनने वाला घिस जाए
पर वे नहीं फटती
दस बाई दस के सीलन भरे कमरे में
पांव सिकोड़ कर सोती रही मां
कि उसके बच्चे पांव पसार सकें
पिता ने कितना धूप–पानी सहा
कि बच्चे छांव में रह सकें

फिर अब किस तरह भूल जाएं बेटियां
कि बेटियों की मां क्या मनचाहा
खा–पहन सकती है
पिता कर सकता हैं पान–बीड़ी का
तुच्छ सा शौक

झुर्रियां पड़े चेहरों और
बिवाई फटे पैरों को ठीक करने का
कोई जादू नहीं जानतीं बेटियां
किंतु उनमें और इजाफा न हो
बस इतना ही चाहती हैं बेटियां.....

◆

पता : नीलकंठ 81, दयानंद विद्यालय, चारकोप सेक्टर–1, कानदिवली वेस्ट, मुम्बई–400067
मो. : 9322496620

कविता

सदा सुहागन रही गुजरिया

लालमणि सिंह

कभी न मैली हुई चुनरिया
सदा सुहागन रही गुजरिया।।

पर्दे के भीतर ही रहकर
मैं रोती ही रही निरंतर।
डोली मेरी कहां रुकी फिर
देख न पाई सही डगरिया।।

मैं परवश थी उतर पड़ी फिर
चली नए घर सखियों से घिर।
सभी स्नेह मुझे करते थे
जो भी मिलते नई नगरिया।।

सबसे मैंने नाता जोड़ा
नहीं किसी से भी मुख मोड़ा।
आंख मिचौली सुख–दुख की थी
कभी धूप थी कभी बदरिया।।

सभी रंग मुझको भाते थे
सभी भाव मन में आते थे।
जीवन में हर खेल खेलती
रहती कुटिया कभी अटरिया।।

पाप पुण्य को मैं क्या जानू
धर्म–अधर्म नहीं पहचानूँ।
जैसे को तैसा ही मानूँ
सभी सनेही रहे बखरिया।।

सब मुझको भोली कहते हैं
नित मेरी झोली भरते हैं।
ढोते–ढोते हार गई मैं
भारी होती गई गगरिया।।

बीते कितने साँझ सवेरे
जीवन के लगते हैं फेरे।
ढूँढ–ढूँढ अपने प्रियतम को
जनम–जनम मैं हुई बवरिया।।

मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर में
वन में गुफा तीर्थ घर–घर में।
गाँव–गाँव में नगर–नगर में
कितनी देखी हाट बजरिया।।

कितने स्वांग बनाए अपने
कितने मैंने देखे सपने।
कितने मन्नतें मानी मैंने
कितनी पूजी धाम पथरिया।।

पीर औलिया योगी पंडित
मिले विरक्त ज्ञान से मंडित।
सब साधन अपनाये मैंने
कभी न रखी कोई कसरिया।।

पतझड़ बसंत कितने देखे
मैं सहज रही सबके लेखे।
शीत घाम चाहे बरखा हो
पछुआ पुरवा बहे बयरिया।।

प्रियतम तो मेरे मन मानी
मिलने में भी आना कानी।
चुनरी मेरी हुई पुरानी
सूनी मेरी रही सेजरिया।।

रही सदा ही मैं अनजानी
कभी नहीं सूरत पहचानी।
मैंने भी मन में है ठानी
बीते चाहे लाख उमरिया।।

सोच रही अब अपने मन में
कहीं चली जाऊँ निर्जन में।
नहीं भेजते कभी न लेती
भूली झूठी सही खबरिया।।

सखियों ने नाता तोड़ा है
और सभी ने मुख मोड़ा है।
सांध्य समय है नहीं रहूँगी
कभी मिलेंगे कहीं सांवरिया।।

◆

प्रस्तुति : प्रभात कुमार सिंह
पता : सुजानगंज, जौनपुर
मो. : 7905215332

गौरैया

कृष्ण कुमार यादव

गौरैया

चाय की चुस्कियों के बीच
सुबह का अखबार पढ़ रहा था
अचानक
नजरें ठिठक गईं
गौरैया शीघ्र ही विलुप्त पक्षियों में।

वही गौरैया,
जो हर आँगन में
घोंसला लगाया करती
जिसकी फुदक के साथ
हम बड़े हुए।
क्या हमारे बच्चे
इस प्यारी व नन्हीं–सी चिड़िया को
देखने से वंचित रह जायेंगे!
न जाने कितने ही सवाल
दिमाग में उमड़ने लगे।

बाहर देखा
कंक्रीटों का शहर नजर आया
पेड़ों का नामोनिशां तक नहीं
अब तो लोग घरों में
आँगन भी नहीं बनवाते

एक कमरे के फ्लैट में
चार प्राणी ठुंसे पड़े हैं।
बच्चे प्रकृति को
निहारना तो दूर
हर कुछ इण्टरनेट पर ही
खंगालना चाहते हैं।

आखिर
इन सबके बीच
गौरैया कहाँ से आयेगी?

सभ्यताओं का संघर्ष

सभ्यताओं का संघर्ष
एक सभ्यता और दूसरी सभ्यता
के बीच अन्तर करता
और उनमें एक द्वंद्व पैदा करता
लेकिन इससे पहले कि
एक सभ्यता विजित होती
उसके द्वारा पल्लवित–पुष्पित
दूसरी सभ्यता भी
सर उठाकर खड़ी हो जाती
अब
वह किसी सभ्यता के
रहमोकरम पर नहीं
खुद को
सभ्यता का मानदंड मानती है
बस
ऐसे ही चलता है
सभ्यताओं का संघर्ष
कोई नहीं सोचता
सभ्यताओं की आड़ में
यह मानवीय संघर्ष है।

रिश्तों का अर्थशास्त्र

रिश्तों के बदलते मायने
अब वे अहसास नहीं रहे
बन गये अहम् की पोटली
ठीक अर्थशास्त्र के नियमों की तरह
त्याग की बजाय माँग पर आधारित
हानि और लाभ पर आधारित
शेयर बाजार के उतार–चढ़ाव
की तरह दरकते रिश्ते
ठीक वैसे ही
जैसे किसी उद्योगपति ने
बेच दी हो घाटे वाली कम्पनी
बिना समझे किसी के मर्म को
वैसे ही टूटते हैं रिश्ते
आज के समाज में
और अहसास पर
हावी होता जाता है अहम।

◆

पता : पोस्टमास्टर जनरल
उत्तर गुजरात परिक्षेत्र, अहमदाबाद –380004
मो. : 09413666599

कविता

प्रतीक्षा और प्रस्थान

शिखा श्रीवास्तव

तुम बैठो यहीं, इन सायों में,
पुरानी यादों की बाहों में।
शायद तुम्हें यकीं है उस पल का,
जो गर्त में छुपा है आने वाले कल का।
तुम करो प्रतीक्षा उस आहट की,
जो शायद कभी सुनाई दे,
या किसी ओझल होती मंजिल की,
जो मुड़कर कहीं दिखाई दे।
मगर मैं तो चला, कि रुकना मुझे गवारा नहीं,
सिर्फ आस के सहारे जीना, अब मेरा सहारा नहीं।
मुझे काम करना है, मुझे कर्म को जीना है,
पसीने की हर बूँद से, अपना मुकद्दर सीना है।
सपनों के महल ढह जाते हैं अक्सर इंतजार में,
सत्य वही है, जो गढ़ा जाए पुरुषार्थ के बाजार में।
मुझे विश्वास नहीं उस मौन खामोशी पर,
जो केवल रुकने का बहाना देती है।
मैं उस गति का हिस्सा हूँ,
जो हर पत्थर को रास्ता बना देती है।
तुम बैठो यहीं, और बुनते रहो इंतजार के धागे,
मैं निकल पड़ा हूँ, अपने कर्मों के रथ के आगे।

◆

पता : 16, आनन्दपुरम, सेक्टर–12, विकास नगर, लखनऊ–226022
मो. : 9936411588

कविता

माँ

साहित्य राजपूत

मां तेरे ममता के छांव में डूब हमेशा जाता हूं.....
तेरे चरणों की धूल को मैं मस्तक से लगाता हूं।..... (1)

है लाख भरोसा तुझ पर ए मां तू झूठ कभी न बतलाएगी.....
खुश हो जाता हूं यह सुनकर तू छोड़ कहीं न जाएगी।

लाती थी एक खिलौना जब तू लाखों खुशियाँ आती थी.....
है अब लानी तेरे कदमों में खुशियां सारी दुनिया की।

मां तेरे ममता की छांव में डूब हमेशा जाता हूं.....
तेरे चरणों की धूल को मैं मस्तक से लगाता हूं।..... (2)

जन्नत कर दी मेरी दुनिया तूने अपने आंचल से मां.....
नहीं चाहिए हाथ किसी का साथ हमेशा देना मां।

तू है साथ मेरे मैं तेरे साथ हमेशा रहता हूं.....
मां तेरी दुनिया का मैं एक चमकता तारा हूं।

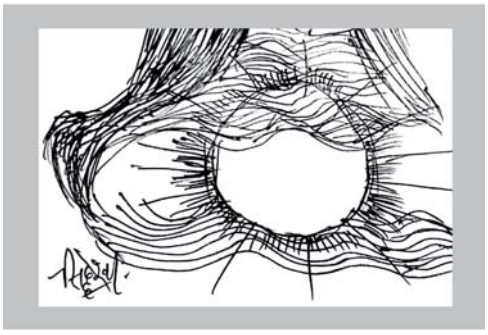

मां तेरे ममता के छांव में डूब हमेशा जाता हूं.....
तेरे चरणों की धूल को मैं मस्तक से लगाता हूं।..... (3)

हर उठी एक आवाज मां बस तेरे नाम की होती है.....
हर जनम में तू मुझे मां मिले बस यही प्रार्थना होती है।

कहता हूं भगवान से मैं मेरी उमर बस तुझे लगे.....
जब तक मेरी सांस रहे बस तेरा आशीर्वाद रहे।

मां तेरे ममता की छांव में डूब हमेशा जाता हूं.....
तेरे चरणों की धूल को मैं मस्तक से लगाता हूं।..... (4)

◆

पता : ग्राम–चांदपुर, खानीपुर
मो. : 8009987042

मुक्ति

निधि वर्मा
(सूचना अधिकारी)

जब,
खाक हो जाऊं मैं,
तो मेरी राख को
गंगा में न बहाना,
उसको डाल देना
पेड़ों की जड़ों में,
और थोड़ी सी राख,
कहीं मिट्टी में भी बिखेर देना,

मुझे यकीन है,
कि जड़ों से मिलकर,
मैं वापस उग जाऊंगी,
किसी शाख पर
एक फूल बनकर,
या फिर शायद
मिट्टी में मिलकर,
किसी बीज के सहारे
निकलूंगी एक पेड़ बनकर,

तब तुम आना,
चुन लेना चाहे मेरे फूलों को,
या बैठ जाना,
मेरी ठंडी छांव के नीचे,
चाहो तो मेरी शाखो पर बने,
गौरैया के घोंसले को देखना,

तब तुमको एहसास होगा,
कि
मैने विसर्जित होकर गंगा में,
मोक्ष क्यों नहीं चाहा,
जब तुम देखोगे,
मुझे फूलों में खिलते हुए,
पत्तों में बढ़ते हुए,
अपने सीने पर,
किसी का जीवन समेटे हुए,

तब यही मेरी मुक्ति होगी,
यही मेरा मोक्ष होगा।
और हां,
अगर तुम्हारा भी मन कहे,
यूं मुझसा बन जाने का,
तो, तुम भी राख बन,
आकर मेरी जड़ों से मिल जाना,
फिर, हम साथ खिलेंगे,
फिर, हम साथ महकेंगे
किसी डाल पर एक फूल बनकर।

◆

पता : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग,
उ.प्र., पार्क रोड, लखनऊ–226001
मो. : 7705800987

कविता

दर्शन की लालसा

वैजयन्ती श्रीवास्तव

दर्शन की लालसा दर्शन की लालसा में, पलकें बिछायें बैठे।
गुरुवर कभी मिलेंगे, मैं कैसे जानूं भगवन्।।

है सांवली सी सूरत वह मोहिनी सी मूरत।
अब तक यही सुना है प्रभु रूप है सलोना।।
हो चार भुजा धारी या अष्टभुजाधारी।
या दो ही भुजाएं हैं मैं कैसे जानूं भगवन।।

भक्तों को उर में रखते, सबके हृदय में बसते।
क्षमानिधान हैं प्रभु, भूलों को भूल जाते।।
पर कल्पना अधूरी, सम्मुख कभी न आते।
ममता है भक्त के प्रति, मैं कैसे जानूं भगवन।।

राधा का श्याम हो या, सीता का राम बनके,
हो काली खप्पर वाली, या सिंहवाहिनी मां।
हनुमान गदाधारी या गुरुवर त्रिपुरारी,
है कौन रूप प्यारा मैं कैसे जानूं भगवन।।

धरती हो या गगन हो, चन्दा हो या सितारे।
रहमत बरसती सब पर दया निधान की ही।
सर्वत्र व्यापी हो प्रभु, कण–कण में समाये हो।
तृण–तृण में समाये हो, मैं कैसे जानूं भगवन।।

मंझधार आप ही हैं, गुरुदेव किनारा भी।
सब रूप आप में ही ब्रह्माण्ड समाया है।
जीवन की नौका सौंपी, गुरुदेव आपको ही।
किस ओर जा रही है, मैं कैसे जानूं भगवन्।।

दर्शन की लालसा में, पलके बिछाए बैठे।
गुरुवर कभी मिलेंगे, मैं कैसे जानूं भगवन।।

◆

पता : बजरंग चौराहा, सूगामऊ रोड, इन्दिरा नगर, लखनऊ
मो. : 9918387541

कविता

शिक्षक !

डॉ. अवंतिका सिंह

क्यों देते हो ऐसी रटी रटाई शिक्षा
क्यों जोर देते हो बार बार
कि हम
बने बनाए पदचिन्हों पर चलें?

हर पल भूत होता जाता है हमारा वर्तमान
जो उलझा हुआ है अनेक झंझावातों में
आज हमारी कठिनाइयां भिन्न हैं
तो उनका निदान भी भिन्न ही होगा।

हमें किसी का प्रतिरूप बनने को मत कहो
और न ही सिखाओ पदचिन्हों का अनुसरण करना
हमें गढ़ने दो एक नया रूप
स्थापित करने दो जीवनमूल्यों की नई परिभाषाएं

रचने दो एक नया इतिहास
जिसमें हम गढ़ सकें
मानवीय मूल्यों के कुछ मौलिक अर्थ
और उगा सकें सभी के लिए नया सवेरा

जो बने भविष्य के पन्नों पर
जीवन के सरल रूप को लिए
हमारे नवीन हस्ताक्षर
अमिट हस्ताक्षर!!

◆

पता : 54, दयाल फोर्ट, विष्णुपुरी 3, अलीगंज, लखनऊ
मो. : 7985117919

ख़्वाबों का ताना–बाना

❑ डॉ. रश्मि शील

'ग़ज़ल; एक खास विचार एवं सलीके से कहीं जाने वाली विधा का नाम है, जिसकी विशेषता है कि विविध बहरों (छंदों) के माध्यम से उसकी संरचना। हिन्दी साहित्य में अपनी कहन और रचन के बलबूते ग़ज़ल ने महत्वपूर्ण स्थान हासिल किया है। दुष्यंत कुमार से चलती हुई हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा निरन्तर आगे बढ़ रही है। यद्यपि दुष्यंत कुमार से पहले भी कबीर, प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, निराला आदि अनेक रचनाकारों ने ग़ज़ले कहीं, लेकिन ग़ज़ल को कहन से, लेखन से और उसे आम आदमी के सरोकारों से जोड़ने का काम दुष्यंत कुमार ने किया। आज हम हिन्दी ग़ज़ल में इसी परंपरा का विकास देखते हैं। इस लिहाज से हिन्दी ग़ज़ल के विकास के लिए यह कालखण्ड बहुत बड़ा नहीं कहा जा सकता है, परन्तु यह सच है कि आज हिन्दी ग़ज़ल खूब लिखी, पढ़ी तथा सुनी जा रही हैं। इसका कारण यह भी है कि ग़ज़लकारों ने हिन्दी ग़ज़ल में कथात्मकता, विचार एवं शिल्प विधान में नवीनता का एहसास कराया। इसी श्रृंखला में प्रतिभासम्पन्न शायर रतन कुमार श्रीवास्तव 'रतन' का नाम लिया जा सकता है, जो उ.प्र. सचिवालय में निजी सचिव के पद पर कार्यरत हैं, तथा जिनका ताजा गजल संग्रह 'ख्वाबों का ताना–बाना' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। श्री रतन जी का पूर्व में एक और ग़ज़ल संग्रह 'ख़्वाबों में जिंदगी मुस्कुराती रही प्रकाशित हुआ था, जिसे पाठकों का भरपूर प्यार मिला और कृति पुरस्कृत भी हुई। यदि रतन जी का पहला ग़ज़ल संग्रह कविता की दुनिया में परिचय के द्वार खोलता है तो यह दूसरा संग्रह आपकी रचनाशीलता को ऊर्जा प्रदान कर एक उछाल की तरह शामिल होता है। गजल को समकालीन कविता से जोड़ने और उसे मुख्य धारा में लाने का सार्थक प्रयास इस संग्रह की गजलों में दिखता है–

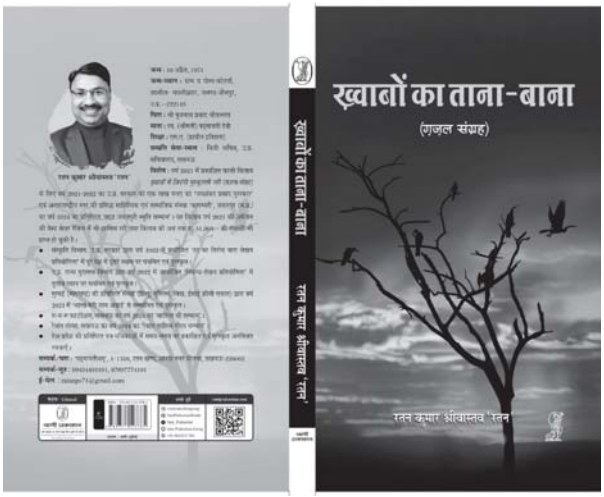

पहले तो अपना गिरेबान देखिए। सर उठा कर फिर आसमान देखिए।

या

पूछ लेता वो बस हाल हमारा, जरूरत कहाँ फिर दवा की थी।।

सिर उठाकर आसमान देखने की कोशिशों के बीच इस संग्रह में 152 छोटी–बड़ी रचनाएं संग्रहीत हैं, जिसमें से 130 ग़ज़ल की सूरत में तथा 22 मुक्तक, मुसद्दस या मुस्तजाद की सूरत में हैं। कृति में सभी रचनाओं को रचनाकार ने चार भागों में विभक्त किया है– (1) तुम्हीं से ही रोशन, ये सारी बहार है (2) बड़े खौफ में जिंदगी गुजर रही है (3) मिला कुछ भी न कभी, मन काय और (4) बिखरे मोती...।

हालांकि रतन जी ने बड़ी साफगोई से अपनी बात कहते हुए यह सफाई दी है कि ''मैं कोई ग़ज़लकार नहीं हूँ, और न ही मुझे गजल का ककहरा ही आता है। अतः मेरी ग़ज़लें बहर आदि की कसौटी पर खरी ही उतरें, यह आवश्यक नहीं है। चूँकि, मेरी अभिव्यक्ति प्रबल रही है, अतः मेरे मन में जब, जैसे और जिस तरह के भाव उठे, उन पर मैंने बस रदीफ और काफिया का मुलम्मा चढ़ा कर उन्हें गजल–सी सूरत दे दी।'' लेकिन मेरी समझ में संग्रह की ग़ज़लें पूरी तरह बहर में हैं। और अगर विशुद्ध आलोचक की दृष्टि से ये ग़ज़लें खरी नहीं उतरती हैं तो फिर रतन जी का यह माफीनामा तो है ही। ''माटी के पुतले हैं तो गुमान क्या करना।''

इस किताब की बाबत रतन जी ने लिखा है–

और क्या कहूँ मैं इस किताब की बाबत।
बस यह आईना है, मेरी ही जिंदगी का।।

तो इस किताब के बरक्स इस आईने को ही देखते हैं। पहले भाग या अध्याय 'तुम्हीं से ही रोशन, ये सारी बहार है.... में 101 ग़ज़लें, जो कवि के शब्दों में 'श्रृंगारिक भाव से ओत–प्रोत हैं', संग्रहीत हैं। सीधे–सादे शब्दों में प्रेम का इजहार करने वाली गजल गर्म रेत पर नदी की शीतलता का एहसास कराती है–

बदल जाएगी जिंदगी, जो तुम साथ दो,
मिल जाएगी हर खुशी, जो तुम साथ दो।।
चल रहे हैं तन्हा, हम तो गरम रेत पे,
बहने लगेगी नदी, जो तुम साथ दो।।

इस खण्ड की ग़ज़लें जहाँ एक ओर प्रेम का प्रतीक हैं, वहीं दुख दर्द का भी बड़ा सहारा हैं। प्यार, मुहब्बत, इश्क की आब–ओ हवा में घुली इन ग़ज़लों में समसामयिकता, सामाजिक चिंताएँ, भाव–भंगिमा, संवेदना और संभावना का आलोक विद्यमान है। प्यार के बीच जिंदगी का फलसफा बताती ग़ज़ल के चंद शेर दृष्टव्य हैं–

लोग कहते हैं कि बेवफा है जिंदगी।
पानी का इक बुलबुला है जिंदगी।।
जिंदगी को दर–दर तलाशा बहुत, पर,
जाने कहाँ लापता है जिंदगी।।

प्रेम की दुनिया जितनी भावपूर्ण होती है, उत्तनी ही चेतना सम्पन्न, सम्बद्धता, सहृदयत्ता और प्रतिबद्धता की त्रिधारा में प्रेम का संसार उज्ज्वल और सार्वभौम बनता है। शायर की सहृदयता, प्रतिबद्धता व सम्बद्धता की बयानी संग्रह की तमाम ग़ज़लों में मिलती हैं–

मुद्दत से जो मेरे साथ है।
वही मेरा दाहिना हाथ है।।
उम्र भले ही ढल गई है मगर,
लचक उसमें वही, आज है।।

हमारे अंदर का भाव जितना उदार और मानवीय होगा, दुनिया उतनी ही सुंदर लगती है। इसीलिए कवि या शायर प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और उसके साथ अपनी संवेदना को जोड़ लेता है। सुख–दुःख, मिलन–विरह के साथ ही प्यार में धोखा आदि की भावनाएँ भी कवि प्रकृति से जोड़ता है–

मिले हैं धोके बहुत उसके प्यार में।
आई न खुशबू कभी रूत–ए–बहार में।।
महकते हैं फिजा में फूल बस वही,
खिलते हैं, जो काँटों के दयार में।।

ये ग़ज़लें प्रेम और जीवन के विविधरूपणी आख्यान हैं। कहीं वह जीवन और परिवेश को प्रेम और उम्मीद के रंग से भरता है, तो कहीं घृणा, संवेदनहीनता व छद्म को रेखांकित करता है–

सितम ढाया है खूब उसने, कैसे मैं दर्द ए बयाँ करूँ।
गम उनका हमें अजीज है, लेने से कैसे मैं मना करूँ ।।

अथवा

उसपे तो किया था ऐतबार बहुत, लेकिन हर बार मैं ही ठगा गया।

तिश्नगी दिल की बुझेगी अब कैसे, आग वह तो दिल में लगा गया।।

परन्तु तमाम बेचैनी, हताशा के बावजूद वह आशा का दामन नहीं छोड़ता और गालिब के समान आग के दरिया में डूबकर इश्क को मुकम्मल करना चाहता है–

है तिश्नगी ये ऐसी, जो बुझती नहीं है।

उठ गई गर नजर तो झुकती नहीं है।।

सब कहते हैं, आग का दरिया है ये,

जिसमें डूबे बिना जन्नत मिलती नहीं है।।

इन ग़ज़लों में प्रेम का सौंदर्य, कहीं साहचर्य तो कहीं स्मृति और दुःख से उत्पन्न टीस के रूप में उभरा है, जिसमें जीवन की असंख्य कोमल अनुभूतियाँ हैं। इन सबके बावजूद संग्रह की ग़ज़लों की विशेषता है कि ये नितांत व्यक्तिनिष्ठ नहीं हैं, उनमें एक ओर सामाजिकता का आग्रह है तो दूसरी ओर प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने की ललक, दुःख का जहर निगल कर मुस्कुराते रहने का अपराजेय उत्साह है। संग्रह के खण्ड–2 'बड़े खौफ में जिंदगी गुजर रही है', की ग़ज़लें आम आदमी से जुड़ती हैं और समय के उस संकट को रेखांकित करती हैं, जो कोरोना की त्रासदी की असहनीय वेदना से व्यथित हैं–

बड़े खौफ में जिंदगी गुजर रही है।

कैसे कहूँ कि हो अच्छी बसर रही है।।

मुँह बांधे चल रहे हैं इस तरह लोग,

जैसे जिंदगी, जिंदगी से डर रही है।।

खौफजदा है इस तरह हर आदमी,

जैसे मौत आ उसके ही सर रही है।।

कोरोना काल के दौरान लिखी गई ये ग़ज़लें अपने से दूर हो जाने का दर्द, स्पर्श की बेचैनी, कोरोना का भय, जीवन के प्रति उम्मीद, सब कुछ अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। कोरोना काल में भी कुछ लोग आपदा में अवसर तलाश रहे थे। ऐसे अमानवीय कृत्यों से दूषित चेतना का पर्दाफाश भी इन गजलों के माध्यम से शायर ने किया है–

दो दिन में हालत ये कैसी दिखने लगी।

थी जहाँ बहार, वहाँ खाक उड़ने लगी।

कभी जिसकी कीमत, कुछ भी न थी,

वही हवा आज लाखों में बिकने लगी।।

या

साँसें बस यूँ चलती रहें इसलिए, आदमी क्या–क्या कर रहा है।

मोहताज है कोई तो इलाज को, तो कोई अपनी जेबें भर रहा है।।

कोरोना काल में हर मनुष्य डरा हुआ था। मानवता तार–तार हो रही थी। आक्सीजन और दवाओं के आभाव में मनुष्य मौत के आगोश में समा रहे थे। शायर रतन कुमार श्रीवास्तव 'रतन' बदलती हवा के रुख से बेजार होकर कहने को मजबूर हो जाते हैं–

यह कौन–सी हवा चल रही है। दुनिया मेरी जो उजड़ रही है।।

करीब आ–आ के, चुपके–चुपके, मौत बनके छलिया, छल रही है।।

कोरोना के बेबस समय से पार पाने की जिजीविषा का काव्यात्मक रचाव हमें इस संग्रह के तीसरे भाग 'मिला कुछ भी न कभी, मन का' में देखने को मिलता है। इस खण्ड की 19 ग़ज़लें जीवन के विविध रंगों को बिखेरती हैं। रतन जी अपनी आंतरिक प्रकृति से अपनी ग़ज़ल के विषयों का चुनाव करते हैं, इसीलिए जब शब्दों में ग़ज़ल उतरकर आती है तो इनके मनोवेगों का हिस्सा बन जाती हैं–

धीरे–धीरे मेरे वजूद को ही मिटाया जा रहा है।

घर की हर बात को मुझसे छुपाया जा रहा है।।

आजकल हो रही हैं मेरे साथ साजिशें बहुत,

खिलाफ मेरे, लोगों को बरगलाया जा रहा है।।

शायर, साजिशों और अपने खिलाफ माहौल में भी आशा का दामन थामे रहता है। उनके अनुसार जब व्यक्ति दुःख और उदासी का सामना करने में सक्षम हो जाता है, तो फिर कविता दुःखीजन के साथ खड़ी हो जाती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि घने अँधेरे के बाद सवेरा अवश्य आता है–

अँधेरा जब गहराता है। सवेरा तभी ही आता है।।
छुपते हैं जब–जब आँसू, गम तब–तब उत्तराता है।।

कविवर जयशंकर प्रसाद जी की रचना 'दुःख की पिछली रजनी बीत विकसता सुख का नवल प्रभात' की तर्ज पर रतन जी भी हताशा और निराशा के बीच जीवन में सुखद क्षणों की तलाश जारी रखते हैं।

रतन की गजलों में उल्लास, उमंग, बेचैनी और उदासी के ढेरों रंग उभर कर आए हैं। रतन जी सहजता और सरल कहन शैली में व्यापक प्रभाव डालने में समर्थ हैं। ये बिना किसी बनावट और कवायद के अपनी बात कहते हैं–

है मोहब्बत तो नई–नई, अफसाना मगर पुराना है।
इश्क चीज है छुपाने की, बे–रहम बड़ा जमाना है।।

संग्रह के खण्ड–4, 'बिखरे मोती' में मुस्तजाद या मुक्तक तथा कुछ शेर अलग–अलग मिजाज के संकलित हैं। 'रतन' जी के अनुसार इन छोटी–छोटी बाइस विजातीय रचनाओं को किताब में शामिल करने का कोई विशेष अर्थ नहीं है, केवल मखमल में पैबंद लगाने जैसी जुगत है। परन्तु मेरे विचार से ये छोटी–छोटी रचनाएँ संग्रह के आँचल में सजे बेल–बूटे हैं। अपने छोटे कलेवर में भी अर्थ–गाम्भीर्य के कारण ये अत्यंत विशिष्ट बन पड़ी हैं। मानवता का संदेश देती ये पत्तियाँ दृष्टव्य हैं–

चलो कोई दीया ऐसा जलाया जाए।
दिलों में फैले तम को मिटाया जाए।।
तीरगी दिखने न पाये कहीं जमीं पे,
रोशनी को इस तरह फैलाया जाए।।

भागदौड़ भरी दुनिया में समय मुट्ठी से रेत की तरह फिसला जा रहा है। कबीर दास जी कहते हैं– 'पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात। रतन जी इसी भाव को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं–

लगता है ऐसा, जैसे कल की ही बात हो,
जमाना गुजरने में भला वक्त कहाँ लगता है।।

इसी प्रकार सुलूक और जिम्मेदारी की दास्तान कहने वाली इन पंक्तियों को देखिए–

आइए, एक ऐसे रंग में रंग जाएँ, हम सभी।
कि फिर कोई और रंग न चढ़े, हम पर कभी।।

वस्तुतः काव्य रचनाएं, चाहे वे गीत हों, ग़ज़ल हों, नवगीत हों, छंद हों या मुक्तक, रचनाकार के अन्तःकरण को मथती बेचैनी, अनुभूतियों, संवेदनाओं को व्यक्त करने का एक जज्बा होती हैं। संग्रह की इन ग़ज़लों को पढ़ते हुए जहाँ हम एक किस्म के दुःख, अवसाद व वेदना से गुजरते हैं, वहीं नैराश्य और समय के कठिन दौर में उम्मीदों की ढेर सारी किरणों का उजाला भी देख पाते हैं। प्रायः ग़ज़लें छोटी बहर में लिखी गई हैं, परन्तु कवि मन के भाव को बेबाकी, आत्मीयता व गम्भीरता से व्यक्त करने का पर्याप्त स्पेस इन गजलों में है।

अंततः हम कह सकते हैं कि एक सधी हुई शालीन और सहज भाषा में लिखी हुई ये ग़ज़लें, कथन की नाजुकी (कथ्य) और बारीकी दोनों में प्रभावपूर्ण हैं। आचार्य शुक्ल जी ने लिखा था, ''कविता कोई रसगुल्ला है कि मुँह में रखिए और हलक के पार हो जाए। कवि को जैसे कविता लिखने के लिए श्रम करना पड़ता है, कविता का पाठक भी उसका अर्थ समझने के लिए श्रम करे।'' इस ग़ज़ल संग्रह के लिए मैं यही कहना चाहती हूँ कि जितने श्रम और धैर्य के साथ रतन कुमार जी ने अपने ख्वाबों का ताना–बाना बुना है, उसी धैर्य के साथ आप इस संग्रह को पढ़िए और ग़ज़लकार के ख़्वाबों से जुड़कर आनंद उठाइए। इस संग्रह के शायर को हार्दिक बधाई और यह आशा करती हूँ कि संग्रह को पाठकों का भरपूर प्यार मिलेगा। ◆

कृति–ख़्वाबों का ताना–बाना
(गजल–संग्रह)
गजलकार–रतन कुमार श्रीवास्तव 'रतन'
प्रकाशक–वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002
मूल्य–495
प्रकाशन वर्ष–2025
पृष्ठ–198

पता : 547 डी/245, शीतलापुरम, राजाजीपुरम 1, लखनऊ
मो. : 9235858688

सिद्धांतों के मृत्युभोज

—विश्व भूषण मिश्र (पी.सी.एस.)

बहुतेरे आदर्श बनाये
और समय ने सब झुठलाए
सिद्धांतों के मृत्युभोज
उत्सव के क्षण कहलाये।

भावनात्मक द्वंद्वों में
जीवन के संशय छन्दों में
सादगी और निर्लोभ भाव सब
जा छुपे धूर्त पाखंडों में।

हर समझौते पर नया बहाना
ख़ुद ही ख़ुद को समझाना
कितना मुश्किल हो जाता है
खुद से आँख मिला पाना।

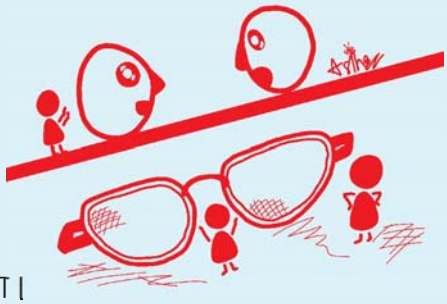

आदर्शों की खेती बोना
समझौतों का मृत्यु बिछौना
विशिष्टता खोने का है क्रम
व्यावहारिक बन साधारण होना।

इस मनोभाव के मर जाने से
कृत्रिम रूप यह अपनाने से
युग भी कुछ धूमिल हो जाता
सिद्धार्थ, बुद्ध के रह जाने से।।

◆

साभार : 'मासूम शहर', पिल्ग्रिम्स प्रकाशन, वाराणसी नवंबर—2025
मो. : 9454321022

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक : समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

नया दौर (उर्दू) : सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी) : उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए विशाल सिंह, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित